श्रीकृष्ण-सन्देश
पौरुषाङ्क
वर्ष : ६
अंक : २

निगमामृत

श्रद्धा-सूक्त : ऋग्वेद १०।१०३,१५४

३

यथा देवा असुरेषु श्रद्धामुग्रेषु चक्रिरे ।
एवं भोजेषु यज्वस्वस्माकमुदितं कृधि ।।

हम होंगे विजयी देवोंने की श्रद्धा विश्वास,
अतः उग्र असुरों पर जैसे पाया जय-उल्लास ।
वैसं ही श्रद्धालु हमारे जो ये याज्ञिक लोग,
भोगार्थी हैं, इनको भी दो श्रद्धे ! प्रार्थित भोग ।।

४.

श्रद्धां देवा यजमाना वायुगोपा उपासते ।
श्रद्धां हृदय्ययाऽऽक्वत्या श्रद्धया विन्दते वसु ।।

देव और यजमान मनुज सव, जिनके रक्षक वायु,
श्रद्धा देवीकी उपासना करते सारी आयु ।
कर उरकी संकल्प-क्रियासे श्रद्धाका आराधन,
श्रद्धासे सव धन पाते हैं, श्रद्धा धनका साधन ।।

श्रीकृष्ण-सन्देश

धर्म, अध्यात्म, साहित्य
एवं संस्कृति-प्रधान
मासिक पत्र

प्रवर्तक
पुण्यश्लोक जुगलकिशोर बिरला

वर्ष : ९ अङ्क : २
सितम्बर, १९७३
श्रीकृष्ण-संवत् ५१९८

वार्षिक : ७ रु०
आजीवन : १५१ रु०

प्रवन्ध-सम्पादक
देवधर शर्मा

सम्पादक-मण्डल
आचार्य सीताराम चतुर्वेदी
पाण्डेय रामनारायणदत्त शास्त्री
गोविन्द नरहरि वैजापुरकर
विश्वम्भरनाथ द्विवेदी

प्रकाशक
श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघ
मथुरा
दूरभाष : ३३८

'श्रीकृष्ण-सन्देश' के उद्देश्य तथा नियम

उद्देश्य : धर्म, अध्यात्म, भक्ति, साहित्य एवं संस्कृति-सम्बन्धी लेखों द्वारा जनताको सुपथपर चलनेकी प्रेरणा देना और जनमानसमें सदाचार, सद्विचार, राष्ट्रप्रेम, आस्तिक्य, समाजसेवा, सर्वाङ्गीण समुन्नति तथा युगके अनुरूप कर्तव्यबोध जाग्रत् करना 'श्रीकृष्ण-सन्देश' का शुभ उद्देश्य है।

• नियम : उद्देश्यमें कथित विषयोंसे संबद्ध श्रुति, स्मृति, पुराण आदिके अविरुद्ध तथा आक्षेपरहित एवं लोककल्याणमें सहायक लेख ही इस पत्रिकामें प्रकाशित होते हैं। लेखोंमें काट-छाँट, परिवर्तन-परिवर्धन आदि करने अथवा उन्हें न छापनेका संपूर्ण अधिकार सम्पादकको है। अस्वीकृत लेख बिना माँगे नहीं लौटाये जाते। वापसीके लिए टिकट भेजना अनिवार्य है। लेखमें प्रकाशित विचारके लिए लेखक ही उत्तरदायी है, सम्पादक नहीं।

लेखक उद्देश्यमें निर्दिष्ट विषयपर ही उत्तम विचारपूर्ण लेख भेजें। लेख स्वच्छ और सुपाठ्य अक्षरोंमें कागजके एक पृष्ठपर बायें हाशिया छोड़कर लिखा होना चाहिए। लेखका कलेवर अधिक बड़ा न रहे। सामग्री सुन्दर, सामयिक तथा प्रेरणाप्रद हो। लेख 'सम्पादक' 'श्रीकृष्ण-सन्देश' रू० नं० ६, केलगढ़ कालोनी, जगतगंज, वाराणसीके पतेपर भेजें।

• 'श्रीकृष्ण-सन्देश' अगस्त माससे प्रारम्भ होकर प्रत्येक मासकी पहली तारीखको प्रकाशित होता है, इसका वार्षिक मूल्य ७) है। जो लोग एक सौ इक्यावन रुपये एक साथ एकबार जमा कर देते हैं, वे इसके आजीवन ग्राहक माने जाते हैं। उन्हें उसी चन्देमें उनके जीवनभर 'श्रीकृष्ण-सन्देश' मिलता रहेगा।

ग्राहकको अपना नाम पता सुस्पष्ट लिखना चाहिए। ७) चंदा मनि-आर्डर द्वारा अग्रिम भेजकर ग्राहक बनना चाहिए। वी० पी० द्वारा अंक जानेमें अनावश्यक विलम्ब तथा व्यय होता है।

• विज्ञापन : इसमें उत्तमोत्तम समाजोपयोगी वस्तुओंका ही विज्ञापन दिया जाता है। अश्लील, जादू-टोने आदि तथा मादक द्रव्योंके विज्ञापन नहीं छपते। विज्ञापन पूरे पृष्ठपर छपनेके लिए ५००) रुपये तथा आधे पृष्ठपर छपनेके लिए ३००) रुपये भेजना अनिवार्य है।

पत्र-व्यवहारका पता।

व्यवस्थापक—'श्रीकृष्ण-सन्देश'

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघ

मथुरा

अनुक्रम

मासिक व्रत, पर्व एवं महोत्सव

[संवत् २०३० आश्विन कृष्ण एकादशी शनिवार २२-९-'७३ से कार्तिक कृष्ण अमावास्या शुक्रवार २६-१०-'७३ तक]

सितम्बर : १९७३ ई०

दिनाङ्क	वार	व्रत-पर्व
२२	शनिवार	इन्दिरा एकादशो व्रत सबके लिए
२४	सोमवार	सामप्रदोष १३ व्रत, मासशिवरात्रिव्रत
२६	बुधवार	स्नान-दानके लिए अमावास्या, श्राद्ध, पितृविसजन
२७	गुरुवार	प्रतिपद् शारद नवरात्रारम्भ
३०	रविवार	श्रीगणेशचतुर्थी व्रत

अक्टूबर : ११७३ ई०

दिनाङ्क	वार	व्रत-पर्व
२	मंगलवार	गान्धी-जयन्तो
३	बुधवार	सरस्वतो-आवाहन
४	गुरुवार	महाष्टमी ८ व्रत
६	शनिवार	विजयादशमी, अपराजिता पूजन, सरस्वती-विसर्जन
८	सोमवार	पापाङ्कुशा एकादशी व्रत सबके लिए
९	मंगलवार	भौम प्रदोष १२ व्रत
११	गुरुवार	शरत्पूर्णिमा
१२	शुक्रवार	स्नानदानकी पूर्णिमा, बाल्मीकि-जयन्ती
१५	सोमवार	संकष्टी गणेशचतुर्थी व्रत
२२	सोमवार	रम्भा एकादशी व्रत सबके लिए
२३	मंगलवार	भौम प्रदोष १२ व्रत, धन्वन्तरित्रयोदशी (धनतेरस)
२४	बुधवार	मासशिवरात्रिव्रत, नरक चतुर्दशी, हनुमज्जयन्ती
२५	गुरुवार	दीपावली, लक्ष्मीपूजन
२६	शुक्रवार	स्नानदानके लिए अमावास्या

●

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान :

प्रत्यक्ष-दर्शियोंके भावभीने शब्द-सुमन

★

मुझे आज परम पावन धाम एवं प्राचीनतम स्थान भगवान् श्रीकृष्णकी जन्मभूमिको देखनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। स्थानको पवित्रता तथा चमत्कारिता देखकर स्वभावतया पुरातन पुरुष लीलामय भगवान्की पावन स्मृतियाँ उभरकर मानस पटलपर छा जाती हैं। सबसे आश्चर्यजनक एवं कल्पनातीत प्रस्तरमें उभरी हुई भगवान्की बारह मूर्तियाँ हैं जिन्हें देखकर ईश्वरकी सत्ता एवं सार्वभौमतामें अटूट विश्वास होता है। यहाँ आकर जो आत्मीय शान्ति मिलती है वह वर्णनातीत है। मेरा विचार है कि यहाँसे जो पत्र-प्रकाशित होता है उसके माध्यमसे श्रीकृष्णके सन्देशको देशके कोने-कोनेमें पहुँचानेका प्रयत्न किया जाय तो आजके भौतिकवादी युगमें मानवको वास्तविक सुखदायिनी शान्ति प्राप्त होगी।

जगदीश सिंह तोमर

भूतपूर्व विधायक, मुरैना (म० प्र०)

आज पंजाबके सरकारी शिक्षक वर्ग केन्द्रीय हिन्दी संस्थानसे श्रीकृष्ण-जन्मस्थानके दर्शनार्थ उपस्थित हुए। इस भव्य स्थान ने हिन्दू जातिका केवल भारतमें ही नहीं, अपितु संसार भरमें ज्वलंत करनेका श्रेय प्राप्त करनेमें अद्वितीय कार्य किया है।

हमारी सबकी इस स्थानके लिए शुभकामना है।

शुभचिन्तक

कर्मचन्द शर्मा फाजिल्का

महेशानन्द,

अमृतसर।

A peaceful place-nice and quiet for a change.

Ruth

Zurich, Switzerland.

We are very happy to find this place.

Ave Wivestad

Symore Wive Stad-Norway.

I feel extremely grateful and honoured to have had the opportunity to visit this sacred birth place of Lord Sri Krishna.

Vakeie Schier

Tasmania (Australia)

This was our desire right frome arly childhood to visit the place where Lord Krishna was born. Now Since this wish has been granted by the grace of Lord Krishna even if we die now we will have no regrets. Wonderful place to remind people of our religion.

MR. & MRS. Team Harkisoen
Sheo Raj Pandey
Doctor Sophie Redmond STR. 132
Paramaribo, Surinam
South America.

It was very interesting to visit Krishna Janmasthan. Everytime one visits this place, it invigorates the soul. The enviroments have been kept very calm and clean.

S. S. Mittra
4 Scindia House
New Delhi.

A place which every Hindu ought to visit for a Solace to his eternal soul. A DARSHAN of the KARAGAR takes us back to period as old as 5200 years where Lord Krishna revealed Himself at the spot. Elevation of Soul and feelings is a natural out-come of a visit to the spot.

The figures which are being revealed in the stones by gradual process, are really a marvel, and one wonders that the Lord still holds the place so dear to Himself. Some of the figures of Radha-Krishna are quite distinct and its revealation is really a miracle which can hardly be explained by science.

The peace pervading here is that of a real Ashrama. The good in man overtakes all other feelings even if for a moment. The very idea of establishment of such an institution at the place, seems to have sprung from an inspiration from the Lord Krishna Himself. I wish I could be a perpetual visitor to the place. But for this, all will be in Vain in Mathura.

Bishnu Kumar
Treasury Officer,
Mathura.

वर्ष : ९] मथुरा : सितम्बर, १९७३ [अङ्क : २

सांख्ययोगी और कर्मयोगी

जो तत्त्वका ज्ञाता है, ऐसा सांख्ययोगी पुरुष कभी किसी भी क्रियाके कर्तापनका अभिमान अपने ऊपर नहीं लादता है यद्यपि वह रूप देखता है, शब्द सुनता है, किसी वस्तुका स्पर्श करता है, फूल सूँघता है, भोजन करता है, चलता-फिरता है, सोता है, सांस लेता है, बोलता है, किसी वस्तुको देता लेता है, आँखें खोलता और मीचता है, तथापि ऐसा नहीं मानता है कि मैं कुछ करता हूँ; उसकी यह निश्चित धारणा होती है कि इन्द्रियाँ स्वयं अपने-अपने विषयोंमें विचर रही हैं, मैं स्वयं कुछ नहीं कर रहा हूँ। यह मान्यता दम्भ या दिखावेके लिए नहीं होतीं; उसको यही अनुभव होता है। जो पुरुष सब कर्मोंको परमात्माकी सेवामें अर्पित करके आसक्तिशून्य होकर कर्म करता है, वह कर्म-जनित पुण्य या पापसे उसी तरह लिप्त नहीं होता है, जैसे कमलका पत्ता पानीमें रहकर भी उससे लिप्त नहीं होता है।

जो निष्काम कर्मयोगके पथपर चलने वाले हैं। वे ममत्व-बुद्धिसे रहित केवल इन्द्रियों द्वारा अथवा मन-बुद्धि एवं शरीर द्वारा भी आसक्तिके त्यागपूर्वक अन्त:करणकी शुद्धिके लिए कर्म करते हैं। इसीलिए निष्काम कर्मयोगी कर्मोंके फलको त्यागकर, पर-मात्माको अर्पित करके नैष्ठिकी शान्तिको प्राप्त होता है, उसे भगवान्की प्राप्ति हो जाती

है। परन्तु जो अयुक्त है—सकाम भाव रखने वाला है, वह फलमें आसक्त होकर कामनाके द्वारा बँधता है। इसलिए निष्काम कर्मयोगका आचरण सबसे उत्तम है।

सांख्ययोगी अपनी इन्द्रियोंको पूर्णतः वशमें रखता है। वह सब कर्मोको मनसे त्याग कर उनके कर्तृत्वाभिमानसे मुक्त हो सुखसे रहता है। वह देहधारण करके नव द्वार वाले शरीर रूप गृहमें रहकर भी न कुछ करता है और न करवाता ही है। परमात्मा जगत्के प्राणियोंके लिए न तो कर्तापनकी सृष्टि करता है, न कर्मोंकी। कर्मफलोंके साथ उनके संयोगका भी विधायक वह नहीं है। यह सब तो स्वभावका काम है; प्रकृति ही सब कुछ करती हैं; गुण ही गुणोंमें बरत रहे हैं; फिर चेतन आत्मा कर्मोंका कर्ता कैसे हो सकता है? परमात्मा सर्वव्यापी है; वह न किसीके पाप ग्रहण करता है, न पुण्य। अज्ञानके आवरणसे ज्ञान ढक गया है। इसीलिए जीव मोहित हो रहे हैं। जिनके अन्त:करणका अज्ञान ज्ञानके द्वारा नष्ट कर दिया गया है, उनका वह ज्ञान सूर्यके समान प्रकाशमान हो सच्चिदानन्दघन परमात्माके स्वरूपको प्रकाशित कर देता है। जिनकी बुद्धि, जिनके मन उन परमात्माके साथ ही जुड़े हुए हैं; जिनकी उन्हींमें एकीभावसे स्थिति है और जो एकमात्र उन्हींके परायण हैं; उनके सारे कल्मष (पाप-ताप) ज्ञान-गङ्गाकी धारासे धुल जाते हैं; और वे उस परम गतिको प्राप्त होते हैं; जहाँसे फिर इस संसारमें लौटकर आना नहीं पड़ता है। परब्रह्म परमात्मा ही सम हैं; उनका दर्शन ही समदर्शन है। ज्ञानी पुरुष सर्वत्र समदर्शी होते है। वे विद्याविनयासम्पन्न ब्राह्मणमें, गौमें, हाथीमें, कुत्तेमें और चाण्डालमें भी समदर्शी होते हैं, सबमें समानरूपसे उन्हें परमात्माका दर्शन होता है। समदर्शनका अर्थ समवर्तन कदापि नहीं समझना चाहिए। बर्ताव तो सबके साथ एक हो ही नहीं सकता। सबके प्रति समदृष्टि अवश्य हो सकती है।

जिनका मन समत्वभावमें स्थित है, उन्होंने इसी जीवनमें संसारको जीत लिया। तात्पर्य यह कि है वे संसारमें रहते हुए भी उससे पृथक् हैं, जीवन्मुक्त हैं। क्योंकि सच्चिदानन्द-घन परमात्मा सर्वदोषमुक्त एवं सम हैं; अत: समत्वभावमें स्थित पुरुष वस्तुत: परमात्मामें ही स्थित हैं। सामान्य लोगोंकी दृष्टिमें जो प्रिय वस्तु है, उसे पाकर जो हर्षसे फूल नहीं उठता है और संसारी मनुष्य जिसे अप्रिय मानते हैं, उसे पाकर भी जो उद्विग्न नहीं होता है, ऐसा स्थिरबुद्धि संशयरहित ब्रह्मवेत्ता पुरुष ब्रह्ममें ही अभिन्न भावसे स्थित हैं। जिसका मन बाहरके विषयोंमें—सांसारिक भोगपदार्थोंमें आसक्त नहीं है, वह अपने अन्त:करणमें भगवद्ध्यान-जनित सुखको प्राप्त करता है। उसे ब्रह्मयोगयुक्तात्मा कहते है; क्योंकि वह परब्रह्म परमात्मामें स्थित है, अत: अक्षय आनन्दका अनुभव करता है।

●

वन्दनीय हे राधारानी !

वन्दनीय हे राधा रानी !
मूक तुम्हारे गुण गानेमें शेष शारदाकी भी वानी।
अति उज्ज्वल अनुराग-मार्गके त्याग भरे आदर्श तुम्हारे।
न्यारे नये निखिल त्रिभुवनमें कितने मंजुल कितने प्यारे।
हार दिया प्रेमास्पदके हित तुमने निज जीवन बलिदानी॥
वन्दनीय हे राधा रानी !
प्रत्यर्पणके बिना निरन्तर निरवशेष सर्वस्व-समर्पण।
शील सुभाव सुरूप तुम्हारा प्रतिपल प्रियतमका संतर्पण।
सुख माना प्रियके ही सुखमें अपने सुखकी बात न जानी॥
वन्दनीय हे राधा रानी !
श्वास सदृश प्रियतमका दक्षिण वाम संचरण जीवन समझा।
पल-पलका प्रतिकूल आचरण भी औषध संजीवन समझा।
सेवा दी अधिकार न मांगा सौहें सुनीं न भौहें तानी॥
वन्दनीय हे राधा रानी।
मान कोप ईर्ष्यादि कभी जो दिये दिखायी प्रणय प्रसंगे।
प्रीति-पयोनिधिमें प्रतिपल उठतीं वे रसकी तरल तरंगें।
रस - सागरमें नहलाने की प्रियको यह परिपाटी मानी॥
वन्दनीय हे राधा रानी !
प्रिय-प्रवासमें शत वर्षोंका विरह मिला वह शीश चढ़ाया।
एक-एक पल महाकल्प-सा घुल-घुल तुमने सदा बिताया।
डूबी सुखमें रहीं न ऊबीं दुखसे तीव्र तपस्या ठानी॥
वन्दनीय हे राधा रानी !

श्रीकृष्ण-कथा : १

गोकुल

श्री सुदर्शन सिंह 'चक्र'

★

श्रुतिमपरे स्मृतिमपरे भारतमपरे भजन्तु भवभीताः।
अहमिह नन्दं वन्दे यस्यालिन्दे परं ब्रह्म ॥

गोकुल—गोकुल और गोलोक, पर्यायवाची ही तो हैं दोनों। नाममें, अर्थमें और स्वरूपमें भी गोकुल अपने गोलोकका ही पर्याय है। परात्पर नित्य जगत्का जब वह लीलामय अधिष्ठाता अभी बीते इस श्वेतवाराह कल्पके अट्ठाईसवें द्वापरके अन्त और हमारे इस कलियुगके प्रारम्भके संधिकालमें इस धरणीको धन्य करने चला—वह क्या कभी प्राकृत जगत्में आता है? वह आता ही अपने दिव्यधाम, दिव्यभाव, दिव्यरूपमें है। उसका वह दिव्यधाम—वह गोलोक उससे पूर्व ही धराके प्राकृत जगत्को आत्मसात् करके मूर्त हो गया। कालिन्दीका वह वामकूल, वह बृहद्वन धन्य हो गया। वह गोकुल—गोलोक मूर्त हो गया था वहाँ और फिर उसके पादपपुञ्ज, लताकुञ्ज, तृण-दल, पशु-पक्षी, कीट-भृङ्ग, नर-नारी, बाल-वृद्ध—वह नित्य जगत् ही तो मूर्तिमान् हो गया था वहाँ।

नित्यलीलाके नित्यपरिकर पधारे, उस लीलाके उच्चतम अधिकारी पधारे, उत्कट अभीप्सु पधारे और—और युग-युगकी श्रुतियोंकी कामना सफल हुई। उनका चिरन्तन लक्ष्य उनके मध्य आवेगा—वे व्रजदेवियोंमें पधारें नहीं तो क्या यह सुयोग पुनः प्राप्त होनेको है। मुनियोंके मञ्जु मानस, साधनपरिशुद्ध—स्नेहस्निग्ध अन्तर इस गोकुलके तृण, लता, कुञ्ज, भृङ्ग, कीट, पक्षी, मृग, मर्कट आदिके रूपमें तृप्त होने—कृतार्थ होनेको मूर्त हुए हैं।

गोलोक या गोकुल—चाहे जो नाम दीजिये इसे, है यह गौओं का अपरिमित गोष्ठ—गौओंका, उन गौओंका जिनकी चरणरेणु कामधेनुका सर्जन करती है, जिनकी हुँकृतिमें श्रुतियाँ सार्थक होती हैं और जिनका धवल क्षीर क्षीरसागर-शायीको भी पिपासु—उत्कण्ठित पिपासु बना देता है। यह नन्दिनी, कपिला, श्यामा, भद्राका गोकुल—अमल धवल प्रेमाश्रुओंके द्वारा ही इसका कण कण घनीभूत हुआ है। युग-युगकी अनन्त साधना, कल्प-कल्पकी उन्मद अभीप्सा अन्तरमें संचित किये आकुल हृदय ही यहाँ इन विविध रूपोंमें आ पाये हैं और इनके मध्य—इनके मध्य ये चिद्घन, आनन्दघन नित्यप्रेमघन श्यामके ये शाश्वत परिकर—इनके आये बिना क्या वह लीलामय आ सकता है?

गोकुल भूमिपर मूर्त हुआ--भूमिकी अल्पता उसे आबद्ध तो करनेसे रही; किन्तु भूमिवासियोंकी अल्पताकी भी एक प्रतीति है और हमारी इसी प्रतीतिमें वह गोकुल है। गोकुल--जैसे वह नित्यधाम धरापर आकर गोकुल हो गया है, धराको धन्य करनेके लिए वह धराके अनुरूप, उसके इस प्रान्तको आत्मसात् करके भी तदाकार हो गया--वैसे श्रीव्रजराज और श्रीव्रजेन्द्र पट्टमहिषी--बाबा और मैया--जब श्यामको आना है तो उन्हें तो पहले ही आना चाहिए न ?

गोलोक इस धरा पर--भगवान् ब्रह्माकी इस सृष्टिमें तदनुरूप साकार हुआ--गोलोकके अधिपतिको भी तो स्रष्टाका मानवर्धन करना ही चाहिए। बाबा और मैया--श्यामकी नित्य लीला, वह मोहनका शाश्वत धाम और वहाँ बाबा और मैयाकी शाश्वत उपस्थिति न हो तो लीला चलेगी कैसे ? लेकिन गोलोक आज गोकुल हो गया है ! धराके एक भागका रूप लेकर ही मूर्तिमान् हुआ वह, तब स्रष्टाकी कलाको भी कृतार्थ होना चाहिए।

सृष्टिके आदिमें वसुश्रेष्ठ द्रोण और उनकी पत्नी भगवती धराने भगवान् पितामहके पावन पदोंमें प्रणिपात किया 'प्रभो आप कहते हैं कि हम सृष्टिका अभिवर्धन करें; आपकी आज्ञा अनुलङ्घनीय है; किन्तु--किन्तु जब आप हमें सृष्टिमें ही लगाते है तब हमें आशीर्वाद दें, परात्पर प्रभु जब भूमि पर प्रकट हों, हमारा वात्सल्य उनमें अविच्छिन्न हो !'

अच्छा वरदान है, बड़ी उत्तम प्रार्थना है--पर भगवान् ब्रह्माके आठों नेत्र एक क्षणको बंद हो गये। वे ध्यानस्थ से हुए और जैसे स्वतः उनके मुखसे निकल गया हो 'एवमस्तु !' एक क्षणको स्वयं वे कमलासन चौंके--यह हुआ क्या ? उस साधनातीतको क्या प्रदान किया जा सकता है ? लेकिन स्रष्टाकी वाणी तो अज्ञान एवं असत्यका आश्रय नहीं करती। पितामहने दोनों हाथ जोड़कर मस्तक झुका लिया--जो उस अचिन्त्य अपरिमेय लीलामयकी इच्छा।

भगवान् द्रोण और भगवती धरा--कमसे कम स्रष्टाकी दृष्टिमें तो गोकुलमें यही प्रजाधिप नन्दराय और श्री यशोदा हो रहे हैं इस द्वापरके अन्तमें। बाबाने अपने अंशको आत्मरूप दे दिया--भगवान् द्रोण उनमें एकीभूत हो गये, जैसे सागरका जल-कण पुनः उसमें आ मिला हो और मैयाका ही अंश तो धरामें आता है। उसीके वात्सल्य, क्षमाके अपार गागर के सीकर तो निखिल सृष्टिकी माताओंमें स्नेहका आविर्भाव करते हैं; पर यह बात स्रष्टाकी ज्ञानसीमासे परे है और इसी भाँति हमारी ज्ञानसीमासे परे है यह गोलोकका मूर्तरूप।

× × ×

गोकुल--मथुराके ठीक सम्मुख श्री यमुनाजीके दूसरे तटपर बसा यह गोकुल, यहाँ असंख्य गायें और उनके संरक्षक गोपगण। गोकुलके अधिपति श्रीव्रजेन्द्र और मैया--मैया यशोदा--बस ! यह सीधी-सादी बात ही समझमें आजाय तो बहुत। हम अपने गोकुलकी ही बात करें।

महाराज ययातिके ज्येष्ठ पुत्र यदुके वंशमें महाराज दशार्हकी परम्परामें महाराज वृष्णि इतिहास-प्रसिद्ध हैं। वृष्णि-वंशमें विदुरथपुत्र महाराज देवमीढ़की वंश-परम्परा मुख्यरूपसे

द्विधा हो गयी। महाराज देवमीढ़की दो पत्नियोंमें एक क्षत्रियकन्या और एक वैश्यकन्या थी। क्षत्रियकन्याके द्वारा उनके पुत्र हुए शूर और इन्हीं महाराज शूरकी पत्नी मारिषाके हुए महाभाग श्री वसुदेवजी। महाराज देवमीढ़की दूसरी पत्नी जो वैश्यकन्या थीं, उनके पुत्र पर्जन्य जी हुए। वैश्यकन्याके पुत्र होनेके कारण पर्जन्यजी गोप माने गये। महाराज देवमीढ़ने उन्हें मथुरा-मण्डलका व्रजाधिप निश्चित किया। इस प्रकार भारतमें यादव-राजधानी मथुरामें यह नवीन परम्परा प्राप्त हुई कि राज्यके समस्त गोधनका आधिपत्य नरपतिके हाथमें नहीं रहा। पर्जन्यजीने श्री यमुनाजीके दूसरे तटपर अपना केन्द्र बनाया। उनका गोष्ठ-केन्द्र--उनका गोकुल मथुरासे कम वैभवशाली, शक्तिशाली नहीं रहा। गोधन--भारतका सर्वश्रेष्ठ धन जिसका अपना हो, उसके वैभव, उसके ऐश्वर्यको शोभा और महत्ता स्पर्धासे परे है।

शास्त्र नहीं कहते कि क्षत्रियके अतिरिक्त कोई और भी शासन दण्ड सम्हाले। अपने वर्णाश्रमाचारका पालन ही कल्याणप्रद है। मथुरा यदु-राजधानी है--गोकुल उससे अमर्ष करे क्यों! अन्ततः मथुरा नरेश व्रजाधिपके बन्धुत्व--उसमें अधिकारका मद तो पीछे--बहुत पीछे आया।

व्रजाधिप पर्जन्यकी पट्टमहिषी वरीयसीने पाँच कुमार प्राप्त किये, पञ्चम पुरुषार्थ ही उनकी गोदमें जैसे पञ्चधा हो गया हो। उपनन्द, अभिनन्द, संनन्द, नन्द और नन्दन। नन्दिनी और सुनन्दा--दो कन्याएँ भी आयीं उनकी पावन गोदमें। गोष्ठाधिपत्य कोई साम्राज्य नहीं, जो वंश-परम्परासे ही चले और ज्येष्ठ पुत्रको ही प्राप्त हो। गोकुलके गोप--वे सहयोगी, सहकर्मी, सहधर्मी हो नहीं--भ्राता होते हैं। उनकी समिति ही अपना अधिपति चुना करती है। गोकुलके गोपोंने व्रजाधिपके मध्यम कुमार नन्दरायको अपना अधिपति चुन लिया। बड़े भाई उपनन्द और अभिनन्द तो प्रस्तावक और समर्थक ही थे और तब भला, छोटे भाई क्या उस उल्लासमें योगदान करनेसे पीछे रह सकते थे।

वह दिन--उल्लास, आनन्द, उत्सवका वह दिन व्रजमें क्या विस्मृत होनेको है कभी--उस दिन व्रजाधिप पर्जन्यने श्रीनन्दरायके मस्तक पर अपनी पगड़ी बाँधी, बड़े भाइयोंने दण्ड लेकर दोनों पार्श्वोंमें उपस्थिति ग्रहण की और छोटे भाइयोंने पृष्ठभागमें रक्षाका भार लिया। वृद्ध गोपोंने आशीर्वाद दिया। तरुणोंने अभिवादन किया और युवकोंने जयनादसे गगन गुञ्जित कर दिया। महर्षि शाण्डिल्यका वेदपाठ और विप्रोंके स्वस्तिवाचन--सब परिपूत-से हो गये उस दिन।

माता पाटलीकी प्राणप्रिय कन्या, महागोप सुमुखकी जगत्पावनी पुत्री और बाबा पर्जन्यकी शीलमयी पुत्र-वधू--आज व्रजेश्वरी बनी वह। बड़ी जेठानी तुङ्गीने उसे स्नान कराया, छोटी जेठानी पीवरीने पट्टवस्त्र दिये, देवरानी कुवलाने आभरण अङ्गोंमें सजाये और छोटी देवरानी अतुला--वह अनुजा-सी तो आज पदोंमें लाक्षाद्रव सज्जित करते तुष्ट ही नहीं होती। यशोदा--व्रजेश्वरी यशोदा--और सचमुच व्रजका सौभाग्य-सुयश उस व्रजेश्वरीका दान ही तो है।

आज श्रीनन्दराय व्रजेश्वर हो गये। आज उनका अभिषेक हो गया है। व्रजाधिप—गोकुल तो व्रजाधिपका अपना गोष्ठ है। वे तो मथुरा-मण्डलके—पूरे चौरासी कोस व्रजमण्डलके अधिपति हैं। पूरा व्रज उनका है—उनका अपना ही परिवार तो है। श्रीपर्जन्यजीसे बरसानेके अधिपति श्रीमहीभानुजीकी प्रगाढ़ मैत्री रही है और अब श्रीनन्दरायजी व्रजेश्वर हुए—श्रीवृषभानुजी बरसानेके अधीश्वरको लगा, वे स्वयं ही गोष्ठेश्वर हो गये हैं। वे स्वयं व्रजपति हो गये होते तो इतने आनन्दित हो पाते—कहना कठिन ही है। श्रीनन्दरायजीसे उनकी बालमैत्री है। दोनों कुमारावस्थाके सखा और किशोरावस्थाके सहपाठी हैं। बरसाना—व्रजमें वही तो गोकुलके पश्चात् सर्वश्रेष्ठ गोष्ठ है। व्रजपतिका तिलक बरसानेके स्वामीके करोंसे ही तो साङ्गता प्राप्त करता है और साङ्गताका प्रश्न ही कहाँ रहा; जब वृषभानुजीने दण्ड लेकर व्रजेश्वरके अभिषेकमें हठात् संनन्दजीके साथ पृष्ठरक्षकका स्थान लेकर सबको चौंका दिया। चौंका तो दिया वृद्ध महीभानुजीने—सबसे प्रथम उपहार वे आवेदित करेंगे—आशा किसे थी! उन्हें तो व्रजपति अभिवादन करते पितृपदोंमें प्रणत होनेके साथ और वे आशीर्वाद दे देते; किन्तु—किसे पता था कि वे इस प्रकार तिलक-क्रिया सम्पन्न होते ही स्वयं इतनी शीघ्रतासे उठेंगे और उनका उपहार—उसकी परिगणना कौन करे! उन्होंने तो उपहारके निश्चित नियम एक ओर ही रख दिये। अमूल्य रत्नराशि, अपार गोधन और यह वस्त्राभरण—यह तो प्रथा नहीं है। प्रथा तो केवल उपहारका नाम करनेकी है—एक पात्र दधि और बस! व्रजपति क्या कर लेते हैं? प्रेमोपहार—प्रथापूर्ति; किन्तु जब स्नेह सीमाओंको अतिक्रान्तकर उमड़ता है, कौन उसे वारित कर सकता है। 'व्रजेश, यह भी तुम्हारा एक अनुचर है—इसे अपनाये रहना' स्नेहगद्गद स्वर पिताका संकेत पाकर जब सचमुच वृषभानुजीने मस्तक झुकाकर चरण-स्पर्श ही करनेका प्रयत्न किया—श्रीनन्दरायने कब उनको उठाकर हृदयसे लगा लिया—यह देखना कुछ सहज नहीं था। सभासदोंके नेत्र स्नेह-सिक्त हो गये—नव व्रजपतिने अविलम्ब श्रीमहीभानुजीके पदोंमें जब मस्तक रक्खा और जब उन पूज्यने चुपचाप उठाकर हृदयसे लगा लिया उन्हें। वाणी आशीर्वाद दे—क्या आवश्यकता इसकी और इतनी शक्ति आवे भी कहाँसे। सच्चा अभिषेक तो अब हो रहा है। नेत्रोंकी इस स्नेह सुधासे किस तीर्थोदककी तुलना की जाय!

× × ×

श्रीनन्द—व्रजेश्वर श्रीनन्दराय—जैसे व्रज नवीन हो गया एक ही दिनमें। व्रज और व्रजपति—सदा ही यह बन्धुत्वका ही सम्बन्ध रहा है। व्रजका प्रत्येक गोष्ठ, गोष्ठका प्रत्येक गोप व्रजपतिके लिए जीवनोत्सर्ग करनेको प्रस्तुत रहा है और व्रजपति—व्रजपतिने ही कब जाना है कि उनका भी कोई गोष्ठ है, उनका भी कोई गृह है। उनके लिए प्रत्येक गोष्ठ, प्रत्येक गृह अपना ही रहा है; किंतु अब—अब तो बात ही अद्भुत हो गयी है। पता नहीं क्या हो गया है—गोपोंको लगता है, उनके गोष्ठ उनकी अपेक्षा व्रजपतिके अधिक स्नेह-भाजन हैं। अब तो अपना गोष्ठ, अपना गृह, अपना शरीर—जैसे सब एक कोटिमें आ गया है और प्राण—प्राण तो इन शरीरों-

में नहीं—वह तो व्रजपतिके रूपमें साकार हो गया है। व्रजपति—भला, ऐसा भी कहीं किसीने कोई अधिपति पाया होगा—उन्हें अपने गृह और गोष्ठका पता ही नहीं। व्रजेश्वरी स्वयं गोष्ठ न सम्हालें तो बहत्तर कोटि गायोंका बन्धन कैसे होगा—जैसे वे सोच ही नहीं सकते; किन्तु गोकुल ही नहीं, पूरे व्रजमें, व्रजके एक-एक गोष्ठमें, एक-एक गोपके यहाँ कितनी गायें हैं, उनके प्रतिमास कितने बछड़े होते हैं, किसके गोष्ठमें किन-किन रंगों की गायें हैं, किस गौ या वृषभकी क्या विशेषता है, किस बछड़े या बछड़ीकी विशेषता कैसे बढ़ायी जाय—जैसे सब वे वहीं बैठे प्रत्यक्ष देखते-से रहते हैं। पशुओंके जल, तृण, सेवा, स्थान आदिका प्रबन्ध गोप भला, क्या करें? वे कुछ सोचें—इससे पूर्व तो व्रजपतिका आदेश उसे सम्पन्न भी करा देता है।

किसीके घर जन्म, गोचारण, विवाह—कोई मङ्गलकृत्य होनेवाला है—इतना बड़ा व्रज, नित्य महोत्सव ही रहता है उसमें। गोप सोचते ही रह जाते हैं—व्रजेश्वरको आमन्त्रित करनेका सौभाग्य मिलेगा उन्हें, कहाँ—व्रजाधिप तो आमन्त्रणसे बहुत पूर्व स्वयं आकर महोत्सवका प्रबन्ध ले लेते हैं। व्रजमें वे ही तो कुलपति हैं। सभी गृहोंके विशेष प्रबन्ध वे कैसे सम्हाल लेते हैं—वे ही जानें।

ये गोप—ये कदाचित् सोते समय स्वप्न भी यही देखते होंगे कि व्रजराजकी कौन-सी सेवा वे कर सकते हैं। यह गौ सुगन्धित दूध देती है, यह वृषभ अत्यन्त पुष्ट और सरल है, यह बछड़ी पञ्चचिह्नोंसे सुचिह्नित है, यह अश्व तो श्यामकर्ण है, यह मणि तो नन्दभवनमें ही शोभित होगा—ये बड़े उपहार ही नहीं, फल, पुष्प, दल—छोटे-बड़ेका प्रश्न ही कहाँ है। ऐसा क्या पदार्थ है, जो व्रजेश को देने के समय कुछ भी महत्त्वपूर्ण प्रतीत हो। पर ये गोप—इन्हें तो कहीं विशेषता भर दृष्टि पड़ जाय—'यह तो नन्दरायको देना है'—ये उसी समय दौड़ेंगे और व्रजपति—वे कैसे किसीके स्नेहको अस्वीकार कर दें। यह दूसरी बात कि उपहारके बदले उससे शतगुणित उपहार उसके घर पहुँच जाता है।

ये गोपियाँ—ये तो पुरुषोंसे भी आगे ही रहना चाहती हैं। सब कहीं तो अनुगामिनी हैं और व्रजेश्वरीकी सेवा—भला, यह भी पीछे रहनेकी बात है। गोप कुछ घर लाते हैं और इन्हें सूझती है—'यह तो व्रजरानीके उपयुक्त है।' गोप भी तो प्रोत्साहित ही करते हैं। यह नवतरुका फल है, यह प्रथम नवनीत है गायके बछड़ा देनेके पश्चात् और जो मैकेसे ये उपहार आये हैं—जैसे व्रजरानीको दिये बिना कुछ काममें लेने योग्य हो ही नहीं सकता। कोई करे भी क्या—कोई दिन तो ऐसा नहीं बीतता, जब नन्दभवनसे उन व्रजेश्वरीका कोई-न-कोई उपहार प्रत्येक गृहमें न पहुँच जाता हो। आज नागपञ्चमी है, आज तृतीया है, आज गणेशोत्सव है—श्रीव्रजपतिके महोत्सवोंकी भी कोई गणना है और भला, ऐसा भी महोत्सव कैसे हो सकता है जब कम-से-कम गोकुलके नर-नारी भी नन्दभवनमें भोजन न करें। व्रजेश्वरकी चले तो पूरा व्रज प्रत्येक महोत्सवमें आवे और व्रजेश्वरी तो समझ ही नहीं पाती कि प्रत्येक महोत्सवमें सब गोष्ठ क्यों नहीं आ सकते; किन्तु दूरस्थ गोष्ठों की सुविधा, उनके अनुनयका

सङ्कोच भी तो रखना ही पड़ता है। मासमें दो-एक बार वे एकत्र हो जाते हैं यहाँ, यही क्या कम कृपा है सबकी।' व्रजपतिको किसी प्रकार संतोष करना पड़ता हैं।

× × ×

'श्रीव्रजराजके कुमार होता' बड़ी तीव्र लालसा है व्रज की। लालसा——उत्कण्ठा——अभीप्सा——आतुरता, दिन बीते, मास बीता और मास व्यतीत होने लगे। लालसा——वह तो कबकी आतुरता बन चुकी और अब तो आराधना चलने लगी है। गोप भगवान् सूर्यको अर्घ्य दे करके प्रार्थना करते हैं, गोपियाँ तुलसीके समीप सायंकाल दीपक रखकर अञ्चल फैलाती हैं, गायोंके पदोंमें पुष्पाञ्जलि देकर प्रत्येक गोष्ठमें प्रत्येक अन्तर बड़ी आतुर भावनासे माँगता है——'व्रजराजको एक कुमार !'

ये नन्दराय——कहनेपर भी ये कोई अनुष्ठान कहाँ करते हैं। ये तो बहुत आग्रह करनेपर हँस देंगे और कह देंगे——'श्रीनारायण प्रसन्न रहें, यही क्या कम है।' व्रजरानी——यशोदाजी——ये पतिसे अधिक सन्तोषी, उन्हें कौन क्या सिखावे। इनके लिए तो, व्रजपति प्रसन्न रहें——एक ही प्रार्थना जैसे विश्वमें बनी ही है।

'श्रीनन्दरायके अंशोंमें उज्ज्वलता दर्शित होने लगी, गोपोंकी आकुलता बढ़ गयी। क्या उन्हें युवराज प्राप्त नहीं होगा? 'व्रजरानीका शरीर तो कुछ स्थूल हो चला।' गोपियोंकी प्रार्थनाने व्रतका रूप ले लिया। गोपोंने अनुष्ठान आरम्भ कर दिये। समस्त गोकुल——पूरे व्रजमण्डल एक युवराज चाहता है——न चाहें व्रजराज, न करें प्रार्थना व्रजेश्वरी——पूरे व्रजकी प्रार्थना, वर्षोंकी आराधना, व्रत, अनुष्ठान——वे श्रीनारायण क्या इतनी उपेक्षा कर देंगे? उन्हें एक युवराज चाहिए——युवराज !

× × ×

इधर गोकुलपर वे सर्वेश्वर, दयामय श्रीनारायण परम प्रसन्न हैं; नहीं तो क्या ये मूर्तिमान् तप——ये महर्षिगण, कहीं इस प्रकार कृपा करते हैं? अब तो अनेक तापसोंने समीप ही आश्रम बना लिया है। अनेक तपोधन, श्रुतिपारंगत, लोकप्रतिष्ठित विप्रवर्य स्वतः गोकुल चले आये हैं और नित्य इस प्रकारके अतिथि श्रीव्रजरायपर कृपा करने पधारते हैं——किसका पुण्य है इतना महान्, जो व्रजरायसे स्पर्धा करे इस सौभाग्यमें।

आज ये कोई तापसी पधारी हैं। ये तपस्विनी——ये मानवी हैं? महाशक्ति जगदम्बा इस वृद्धा तपस्विनीके रूपमें नहीं पधारीं——कैसे विश्वास हो! इतना तेज——इतना प्रभाव मानव तो क्या, देवतामें भी क्या शक्य है? समस्त अन्तःपुर ससम्भ्रम खड़ा हो गया। श्रीनन्दरानीने उनके चरणोंमें मस्तक रक्खा, अञ्चल फैलाकर।

'मङ्गल हो!' ओह, इतना स्निग्ध, इतना कोमल, इतना वात्सल्यपूर्ण स्वर! स्नेहके कारण आशीर्वाद जैसे गद्गद कण्ठमें ही रह गया हो। ये उज्ज्वल रजतमय केश, यह तेजोमय वलीवलित गौरवर्ण शरीर और यह भुवन को परम प्रेम प्रदान करती वाणी——जगज्जननी, भगवती अखिलेश्वरी ही आयी है, इसमें गोपियों को और व्रजरानी को अब कहाँ संदेह है।

'माँ, श्रीचरणोंसे यह सेविकाका गृह कुछ काल पवित्र हो और मुझे सेवाका सौभाग्य मिले !' श्रीयशोदा जीने चरण धोये, अर्चा की विधिपूर्वक और अन्तमें प्रार्थना की। आज कितना अहोभाग्य है उनका, इस भव्य रूपमें कितनी प्रसन्नतासे भगवतीने उनकी पूजा स्वीकार की है।

'ना, मैया ! तू मुझे इस प्रकार टाले तो मैं टलनेसे रहा !' भगवतीके साथ यह जो सुन्दर, सुघर सुकुमार बालक है पाँच-छः वर्षका—कितना चपल, कितना भोला है। व्रज-रानीका वात्सल्य तो इसे देखते ही उमड़ पड़ा था। वे तो संकोचवश ही उससे अबतक सम्मान-का व्यवहार करती रही हैं। हृदय तो कहता है, उसे अङ्कमें ले लो। वह उनके अर्पित नैवेद्यका कितना प्रसन्न होकर भोग लगा रहा है; पर वह मैया किसे कहता है ? वह क्या भगवतीका पुत्र है ? लेकिन वह तो व्रजेश्वरीसे कह रहा है—'मैया, मैं तेरा नवनीत छोड़कर अब कहीं जानेसे रहा ! मैं तो यहीं रहूँगा।'

'मधुमङ्गल तनिक चपल है !' अच्छा, तो इसका नाम मधुमङ्गल है ! भगवतीने व्रजरानीके इस भावको बोलते ही लक्ष्य कर लिया। उन्होंने परिचय दिया—'मुझे लोग पूर्णमासी कहते हैं और यह अवधूत वृत्तिसे रहनेवाला बालक मधुमङ्गल है। योगके प्रभावसे हम लोग सदा इसी वयमें रहते हैं। यह चपल है, विनोदी है; पर कहता सच है। मैं स्वयं व्रजराजसे प्रार्थना करने आयी हूँ कि मेरे लिए तुम्हारे नगरसे बाहर एक उटजका प्रबन्ध हो जाय—मेरी इच्छा इस गोकुलके सांनिध्यमें ही रहने की है !'

'गोकुलका और व्रजराजका अहोभाग्य !' नन्दरानीने चरणोंमें आनन्दातिरेकसे मस्तक रक्खा। कोई फल माँगे और उसे कल्पतरु ही प्राप्त हो जाय—आज तो उनके उल्लसित हृदयने यही अनुभव किया है।

भला, यह भी कोई आदेश देने की बात है—सेविकाने दौड़कर व्रजराजको संवाद दिया ! निपुण सेवक स्वयं व्रजराजके लघुभ्राता लेकर आश्रमकी व्यवस्था करने चल पड़े तत्काल और श्रीनन्दरायको तो अब उन तपस्विनीके चरणोंमें अपना भाल पवित्र करना है।

'तुम्हारी गोद पूर्ण हो !' भगवती पूर्णमासीने अपने अभिनव आश्रमका संवाद पा लिया और उठीं, नन्दभवनसे चलते समय उन्होंने चरणोंमें प्रणत व्रजरानीको आशीर्वाद दिया।

'मैया, मेरा सखा आवेगा ! मेरा सखा !!' यह भगवतीका बाल अवधूत—यह आशी-र्वादका भाष्य कर रहा है।

'यह क्या कहा भगवतीने ?' श्रीनन्दरायने विचित्र भावसे सुना। श्रीनन्दरानीने दृष्टि ऊपर की आश्चर्यके भावसे।

'भगवतीने आशीर्वाद दिया। व्रजमें युवराज आवेगा।' गोपियाँ, दासियाँ—उनके आनन्दका कौन वर्णन करे। गोकुलके उत्कण्ठित कर्णोंने सुना भगवतीका आशीर्वाद और उनके हृदयने दुहराया—'व्रजमें युवराज आवेगा !'

●

हिन्दू-संस्कृतके आदिदेव श्रीगणेश

श्री वसन्त राव नेने

★

श्रीगणेश बुद्धिके अधिष्ठाताके रूपमें आर्यों द्वारा पूजित देवता हैं। इनके सम्बन्धमें आर्यग्रन्थोंमें विपुल साहित्य है। गणपति, गणेश अथवा गजानन समस्त हिन्दुओंके आदिदेवता है। विघ्नहर्ता विनायककी पूजा हिन्दुओंके सभी कार्योंके आरम्भमें होती है। हिन्दुओंमें ये देव वैदिककालसे ही परिचित, प्रचलित तथा प्रसिद्ध हैं। भगवान् रामने जब समुद्रपर सेतु बाँधनेका कार्य आरम्भ किया तो सर्वप्रथम श्रीगणेशकी ही स्तुति की थी। नाट्य-शास्त्रमें भरत द्वारा की गयी गणेश-स्तुतिकी परम्परा आज भी प्रचलित है। महाभारतके रचयिता श्री व्यासमुनिने भी विघ्नेश्वरकी कृपा प्राप्त की थी। गणपत्यथर्वशीर्षमें श्रीगणेशका मूलस्वरूप ॐकार माना गया है और अखण्ड परम्परासे इसी स्वरूपकी प्रार्थना तथा पूजा की जाती है। कोई व्यक्ति किसी भी देवताका उपासक क्यों न हो, सबसे प्रथम श्रीगणेशकी पूजा और आराधनाकर उसके पश्चात् ही अपने अभीष्ट उपास्य देवकी पूजा करता है। प्रत्येक धार्मिक कार्य 'श्रीगणाधिपतये नमः' से ही प्रारम्भ होता है।

अथर्ववेदमें गणेशका स्वरूप

हिन्दुओंके इस पूज्य आदि देवताका शुद्ध और भव्य स्वरूप कैसा होना चाहिए, इस सम्बन्धमें अनेक ग्रन्थोंमें उल्लेख है। अथर्ववेदके गणपत्यथर्वशीर्षमें उसका इस प्रकार वर्णन है :

एकदन्तं चतुर्हस्तं पाशमङ्कुशधारिणम्।
रदं च वरदं हस्तैर्बिभ्राणं मूषकध्वजम्॥
रक्तं लम्बोदरं शूर्पकर्णकं रक्तवाससम्।
रक्तगन्धानुलिप्ताङ्गं रक्तपुष्पैः सुपूजितम्॥

गणेशचतुर्थीके दिन जिस मूर्तिकी पूजा होती है, उसका नाम 'सिद्धि-विनायक' है और उसका ध्यान इस प्रकार बताया गया है :

एकदन्तं शूर्पकर्णं गजवक्त्रं चतुर्भुजम्।
पाशाङ्कुशधरं देवं ध्यायेत् सिद्धिविनायकम्॥

श्रीगणेशके ५१ रूप हैं जिनमें निम्नलिखित १६ मुख्य हैं : बाल, तरुण, भक्त, वीर, शक्ति, ध्वज, सिद्ध, उच्छिष्ट, विघ्नराज, क्षिप्र, हेरम्ब, लक्ष्मी, महा, विजय (भुवनेश्वर),

नृत्य और ऊर्ध्व । इन सभी रूपोंका वर्णन संस्कृत-स्तोत्र तथा मराठी-ग्रन्थ 'गणेश-कोष'में हैं । इन षोडश स्वरूपोंकी मूर्तियाँ श्रीरामेश्वरम्‌के शंकर-मण्डपमें हैं, जिनकी स्थापना कांचीपुरम्‌के शंकराचार्य श्री चन्द्रशेखर सरस्वतीने की थी । श्रीगणेशके अनेक अवतार माने गये हैं और उन अवतारोंके भिन्न-भिन्न जन्म-दिवस मनाये जाते हैं, किन्तु भाद्रपद शुक्ल चतुर्थीका दिन श्रीगणेशके जन्म दिवसके रूपमें सर्वत्र मनाया जाता है ।

लोकगीत तथा विदेशोंमें

कोंकणमें प्रचलित लोकगीतके अनुसार 'गण'का अर्थ है गणपति और उसका वाहन मूषक बताया गया है। बहुतोंका मत है कि श्रीगणेशका वाहन मूषक हैं, पर गणपति अथर्वशीर्षमें 'मूषकध्वजम्' ऐसा उल्लेख है । इससे प्रकट होता है कि मूषक गणेशजीका वाहन नहीं है, बल्कि उनके ध्वजपर मूषकका चिह्न था । अन्य लोग 'गरुड़ध्वज', वृषभध्वज' की तरह 'मूषकध्वज' शब्दको मानते हैं । प्रायः देवताओंके वाहन ही उनके ध्वजचिह्न पाये जाते हैं । भारतका ऐसा कोई भी गाँव न होगा, जहाँ श्रीगणेशकी प्रतिमा न हो । तमिलनाडुमें सड़कके प्रत्येक चौराहे तथा पीपलके पेड़के नीचे गणेशकी मूर्ति स्थापित है । विश्वके स्वामी पार्वती-परमेश्वरके पुत्र गणेशको तमिलनाडुमें 'पिल्लयैर'के नामसे जाना जाता है। वहाँके सन्त अवैय्यरने 'विनायकर अहवल'में गणेशका योगशास्त्रसे क्या सम्बन्ध है, इसपर विस्तारपूर्वक लिखा है। वहाँ गणपति-स्तुतिका यह श्लोक बड़ा ही मार्मिक है :

अगजाननपद्मार्कं गजाननमहर्निशम् ।
अनेकदन्तं भक्तानामेकदन्तमुपास्महे ॥

श्रीगणेशका प्राचीन मन्दिर तथा उनकी प्रतिमाएँ ब्रह्मदेश, हिन्दचीन, स्याम, बोर्नियों, मलाया, सीलोन, अफगानिस्तान, तिब्बत, चीन, नेपाल, मैक्सिको, रूस आदि देशोंमें आज भी प्राप्त होती हैं । मूर्ति-विज्ञानशास्त्रमें लिखे प्राचीन ग्रन्थोंमें ऐसे अनेक चित्र देखे जा सकते हैं । इससे इस बातकी पुष्टि होती है कि हमारे प्राचीन धर्म एवं उपासनाका विस्तार भारतमें ही नहीं, वरन् भारतके बाहर भी दूर-दूर देशोंमें था ।

नेपालमें भी गणेश-पूजा होती है और कुँआरी लड़कियाँ सुन्दर पति प्राप्त करनेके लिए गणेश-पूजा करती तथा मंगलवारका व्रत रखती हैं । वहाँ सूर्यविनायक, चन्द्रविनायक, रक्तविनायक, अशोकविनायक, सिद्धिविनायक अधिक लोकप्रिय हैं । कहा जाता है कि नेपालमें गणेश-पूजाका प्रारम्भ अशोककी पुत्री चारुमतीने किया था । सिंहपर आरूढ़ हेरम्ब-गणेशको पूजा नेपालमें अधिक प्रचलित है । नेपाली गोरखा (हिन्दू) तथा नवार (बौद्ध) दोनों ही गणेशकी पूजा करते हैं । नेपाली पोथीमें गणेश-स्तुतिका इस प्रकार विवरण है : **नमो भगवते आर्यगणपतिहृदयाय** । नेपालमें हिन्दू और बौद्धधर्मका मिश्रित प्रभाव है, परन्तु तिब्बतमें बौद्धधर्मका वर्चस्व होनेपर भी इस हिन्दू-देवताकी पूजा वहाँ कैसे होने लगी, यह आश्चर्य और खोजका विषय है । रूसके वाकू स्थानमें एक अग्नि-मन्दिर है, जिसे

हिन्दू अपना मन्दिर मानते हैं और अग्निकी पूजा करनेवाले पारसी अपना बताते हैं। उस मन्दिरके दीवालपर संगमरमरकी गणपतिकी मूर्ति स्थापित है।

हिन्दू-धर्ममें उपासनाके अनेक पन्थ हैं। जैसे : शैव, वैष्णव, शाक्त आदि। इसी प्रकार गणेशके उपासक 'गाणपत्य' कहे जाते हैं। दक्षिण भारतमें, विशेषत: महाराष्ट्रमें इनके बहु-संख्यक उपासक हैं। पेशवा भी गणपतिके उपासक थे और ये ही इनके इष्टदेवता थे। इसलिए उनके समयमें उनकी राजधानी पूनामें बड़े ही समारोहके साथ छह दिनोंतक गणेशोत्सव मनाया जाता तथा सातवें दिन सरकारी इन्तजामके साथ मूर्तिका विसर्जन होता था। काल-प्रवाहमें पेशवाओंका लोप हुआ, किन्तु आज भी उनके वंशज तथा महाराष्ट्रके लोग इस उत्सवको मनाते हैं।

राजनीतिक स्वरूप

मुस्लिम-शासनकालमें हिन्दूधर्म और संस्कृतिपर अनेक आघात हुए। मुस्लिम-साम्राज्यवादकी चक्कीमें पिसते हुए उत्तर भारत और मुस्लिम-आक्रमणसे आक्रान्त दक्षिण भारतके उद्धार और स्वराज्यकी प्रतिष्ठाके भावसे प्रेरित होकर समर्थ गुरु रामदासने जिस प्रकार समस्त देशमें मारुति-मन्दिरोंकी स्थापना कर उसे शिवाजीकी सहायताके लिए गुप्त सैनिक गढ़ोंका रूप प्रदान किया था, उसी प्रकार ब्रिटिश-शासनकालमें चेतना, राष्ट्रिय जागरण तथा संस्कार-प्रचारके उद्देश्यसे लोकमान्य बाल गंगाधर तिलकने सन् १८९४ में पूनामें सार्वजनिक गणेशोत्सवकी स्थापना की। धीरे-धीरे क्वेटासे कोचीन तथा कलकत्तासे कराचीतक इसका प्रसार हुआ और तिलकके समयमें ही देशकी जागृतिके लिए गणेशोत्सव एक सफल साधनके रूपमें उपयोगी सिद्ध हुआ। इसी उत्सवके माध्यमसे स्वदेशी वस्तुओंका उपयोग, विलायती वस्तुओंका बहिष्कार और राष्ट्रिय शिक्षा इन तीन उपदेशोंका भारतके कोने-कोनेमें प्रचार हुआ। धीरे-धीरे लोगोंमें अपने अधिकारोंके प्रति जागृति तथा उसे प्राप्त करनेके लिए मर मिटनेका अदम्य साहस दिखाई देने लगा। समय-परिवर्तनके साथ हिन्दू-धर्म-प्रचार संघटन आदि विषयोंकी चर्चा गौण और स्वदेशी-आन्दोलन, मद्यनिषेध तथा सन् १८९९ के अकाल-पीड़ितोंके लिए 'धन-संग्रह' आदि विषयोंकी चर्चा मुख्यत: होने लगी। सन् १९०५ से १९१० तक उत्सवने बृहत् रूप धारण किया और फिर तिलकके नेतृत्वमें 'स्वराज्य'की आवाज बुलन्द हुई।

सन् १९०८ में तिलकको सात सालके लिए माण्डलेमें नजरबन्द रखा गया। सरकारको आशा थी कि अब उत्सवके कार्यमें शिथिलता आयेगी, किन्तु परिणाम उलटा ही हुआ। सन् १९०९-१० में उत्सवका जोर विशेष रूपसे बढ़ा। सन् १९१६ में 'होमरूल लीग' की स्थापनाके बाद लोकमान्यका देशव्यापी दौरा आरम्भ हुआ और उन्होंने 'स्वराज्य हमारा जन्मसिद्धि अधिकार है' की घोषणा की। जुलाई सन् १९२० में लोकमान्य तिलककी मृत्यु हुई और अगस्तसे असहयोग-आन्दोलनका आरम्भ हुआ और उसीके साथ उत्सवको रूपरेखा समयानुसार बदली।

पूजाके एकविंशति पत्र

धार्मिक कार्यके साथ-साथ गणेश-पूजाका वैज्ञानिक दृष्टिकोण भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। गणपतिको विभिन्न पेड़-पौधोंके पुष्प और पल्लव प्रिय हैं और उनकी पूजाके लिए इक्कीस पौधोंके पत्र और पुष्पोंकी आवश्यकता होती है। भाद्रपदके महीनोंमें ये आसानीसे प्राप्त होते हैं। इन पौधों और पत्रोंका औषधिक महत्त्व भी जो निम्नलिखित है :

१. सुमुखाय नमः माचीपत्रं पूजयामि : माचीपत्रको कुश या दर्भ कहा जाता है। इसका वानस्पतिक नाम इम्पेराटा सिलिड्रिका है। चतुर्दिक् वायुमंडल शुद्ध करनेकी इसमें अद्भुत क्षमता है।

२. गणाधिपाय नमः बृहतीपत्रं पूजयामि : यह कांटेदार पौधा है। सन्तति प्राप्त होनेके बाद आरोग्यप्राप्तिके लिए स्त्रियोंको दिया जाता है।

३. उमापुत्राय नमः बिल्वपत्रं पूजयामि : बिल्वपत्रको वनस्पति विज्ञानमें ऐग्ले-मरमेलौस कहते हैं। यह शिवको अत्यन्त प्रिय है। यह घने क्षेत्रमें जल तथा वायुको शुद्ध करनेकी क्षमता रखता है। इसीलिए देवस्थानके गर्भालयमें बिल्व पत्रको डाला जाता है। स्नानके पूर्व बिल्वपत्रके रसका शरीरपर आलेप करनेपर चर्मकी दुर्गन्धि दूर होती है।

४. गजाननाय नमः दूर्वायुग्मं पूजयामि : दूर्वाका नाम सिनोडान डक्टीलोन है। यह पशुओंका मुख्य खाद्य है। चर्मरोगपर यह उपयोगी ओषधि है।

५. हरसूनवे नमः धत्तूरपत्रं पूजयामि : धत्तूरपत्रको धतूरा या स्ट्रैमोनियम कहते हैं। बिच्छू, गोजर, कुत्ता, चूहा आदिके विष प्रभावको दूर करनेमें यह विशेष उपयोगी हैं।

६. लम्बोदराय नमः बदरीपत्रं पूजयामि : वानस्पतिक विज्ञानमें इसे जिजीफस जुजुबा कहते हैं। यह एक कांटेदार वृक्ष है। इसके पत्ते और फल छोटे आकारके होते हैं। गौओंको देनेसे दूधकी वृद्धि होती है। गायक स्वरमधुरता प्राप्त करनेके लिए इसका उपयोग करते हैं।

७. गुहाग्रजाय नमः अपामार्गपत्रं पूजयामि : इसे अछिरंटस् आसपेरा कहते है। शस्त्रके घाव, और विषैले जन्तुओंके काटनेपर इसका उपयोग होता है।

८. गजकर्णाय नमः तुलसीपत्रं पूजयामि : इसका वानस्पतिक नाम ओछिमम सैंकटिम है। जलवायु शुद्ध करने तथा स्वास्थ्यवर्धन शिव और विष्णुपूजामें भी इसका व्यवहार होता हैं। इसके पत्ते प्रतिदिन सेवन करनेसे कामवासनाका नियन्त्रण हो सकता है।

९. एकदन्ताय नमः चूतपत्रं पूजयामि : आम्रपत्रको अजदारात्त इण्डिका कहते हैं। यह शुभ-अवसरोंपर तोरण आदिके काम आता है। गलेकी कुछ बीमारियोंमें लाभप्रद है कोयलकी कूककी मिठास इन्हीं पत्तोंके सेवनसे हुई है, ऐसा समझा जाता है।

१०. विकटाय नमः करवीरपत्रं पूजयामि : करवीर या कनेरको थे वेटिया नेरिफोलियम कहते है। इससे करवीरादि-तेल वनता है जिससे वालमें पड़े कीड़े नष्ट होते हैं। इसके पत्ते विषैले होते हैं।

११. भिन्नदन्ताय नमः विष्णु-क्रान्तपत्रं पूजयामि : इसे इवलोलुस अलसिनौयडस कहते हैं। तैत्तिरीय उपनिपद्में इसका सन्दर्भ है। इसका रस स्मृतिशक्तिको बढ़ानेमें उपयोगी सिद्ध हुआ है।

१२. वटवे नमः दाडिमीपत्रं पूजयामि : इसे पुनिका ग्रताटा कहते हैं। इसके सेवनसे डीसेन्ट्रीमें आराम होता है। गर्भपातको रोकनेके लिए इसकी पत्तियोंका उपयोग होता है।

१३. सर्वेश्वराय नमः देवदारुपत्रं पूजयामि : इसे सेड्रस देवोदारा कहते हैं। मधुर और विषैले कीटाणुओंको रोकनेमें काम आता है।

१४. फालचन्द्राय नमः मरुवकपत्रं पूजयामि : मरुवक अथवा मदनको ओरिगनम् वलगरा कहते हैं। सूखनेपर भी पत्तोंकी सुगन्ध नहीं जाती। हृदयरोगमें उपयोगी है।

१५. हेरम्बाय नमः सिन्धुवारपत्रं पूजयामि : इसे विटेक्स नेरगुंडा कहते हैं। इससे विषमारणकी अनेक औषधियाँ बनती हैं। आँखमें पत्तेका रस छोड़नेसे दृष्टि तेज होती है।

१६. शूर्पकर्णाय नमः जाजीपत्रं पूजयामि : इसे मिरिस्टिका फ्रैग्रामस कहते हैं। मसालेमें छोड़ा जाता है। अपचको ठीक करता है।

१७. सुराग्रजाय नमः गण्डालीपत्रं पूजयामि : अमरकोशमें इसकी व्याख्या है। छोटे सफेद पुष्पवाला घास अपमान होता है। चर्मरोगमें उपयोगी है।

१८. इभवक्त्राय नमः शमीपत्रं पूजयामि : इसे प्रोसोपिस स्पिसिजेरा कहते हैं। अनेक औषधियोंमें शमीका उपयोग होता है। केश उड़ानेके काममें भी आता है।

१९. विनायकाय नमः अश्वत्थपत्रं पूजयामि : अश्वत्थपत्रको फिकस रिलिजिओसा कहते हैं। बकरियाँ तथा हाथी चावसे खाते हैं। इसकी छालसे अनेक ओषधियाँ बनती हैं।

२०. सुरसेविताय नमः अर्जुनपत्रं पूजयामि : इसे मोरिण्डा टिंक्टोरिया कहते हैं। हृदयरोग, घाव तथा सेप्टिक आदिमें लाभदायक हैं। इसकी पत्तियोंसे अर्जुनारिष्ट बनता है।

२१. कपिलाय नमः अर्कपत्रं पूजयामि : इसे कैलोट्रोपिस प्रोफ़ेसरा कहते है। इसकी पत्तियोंसे दूध जैसा रस निकलता है। विषैले जन्तुओंके काटनेमें इसका उपयोग होता है। बाह्य उपयोगसे घाव और अल्सर ठीक होता है।

अत: गणेशपूजा केवल धार्मिक एवं सांस्कृतिक कार्य ही नहीं वरन् राष्ट्रीय महत्त्वका कार्य भी है। हमारे पूर्वजोंने अनुभव और अनुसन्धानकर श्रीगणेश-पूजाके लिए आवश्यक वनस्पतियोंका औषधिक महत्त्व भी समझा था।

स्वतन्त्र भारतमें हमारा यह पुनीत कर्त्तव्य है कि विघ्नहर्ता श्रीगणेशका उत्सव हम राष्ट्रीय स्तरपर मनाकर देशकी एकता अक्षुण्ण बनाये रखें।

●

हम भक्तनके भक्त हमारे !

डॉ० जितेन्द्रनाथ मिश्र

★

श्रीकृष्णकी भक्तवत्सलताके उदाहरण अनेक हैं, किन्तु कृष्णार्जुन-मैत्रीके प्रसंगमें यह विशेषता जितनी मुखर होकर कृष्णके चरित्रका जितना विकास हुआ है, उतना अन्य प्रसंगोंमें दृष्टिगोचर नहीं होता ! कृष्ण और अर्जुनकी मैत्री मात्र दो व्यक्तित्वोंकी मैत्री नहीं, उसमें मित्रताके सभी पहलुओंका चरम आदर्श दिखलाई पड़ता है।

श्रीकृष्णने बहुतोंपर कृपा की, बहुतोंका दुस्तर भवसागरसे उद्धार किया, स्मरणमात्रसे ही अनेक आपद्ग्रस्त जीवोंको संकटसे उबारा; किन्तु ये सभी उनकी दयालुता और शरणागत-रक्षा मात्रके उदाहरण हैं। अर्जुनके साथ उनकी मैत्री अन्य सभी प्रसंगोंसे भिन्न है। इस प्रसंगमें कृष्णकी उदारता, शरणागत-रक्षा, व्यावहारिक बुद्धि, राजनीतिक तथा कूटनीतिक चातुर्य, वाग्विदग्धता, सैन्यसंचालन, सत्यप्रियता, दूरदर्शिता, साहस, धैर्य आदि चारित्रिक विशेषताएँ तो उभड़कर सामने आती ही हैं; नीति और धर्मके अनेक आयामोंके उद्घाटनका अवसर भी इसी संदर्भमें मिल जाता है।

श्रीकृष्णने किसी लाभ या लोभसे प्रेरित हो अर्जुनके साथ मित्रता नहीं की, अपितु इस दृष्टिसे की कि मित्रता उसी व्यक्तिसे करनी चाहिए, जिसे उसकी अपेक्षा हो। कौरवोंकी अतुलनीय शक्ति-सम्पन्न सेनाके मुकाबिले पाण्डव-सेनाकी शक्ति नगण्य थी। स्वयं श्रीकृष्ण महाभारतके द्रोणपर्वमें जयद्रथ-वधके प्रसंगमें दुर्योधनको अत्यद्भुत योद्धा बतलाते हुए कहते हैं कि उसके समान रथी दूसरा कोई नहीं है :

दुर्योधनमतिक्रान्तमेतं पश्य धनंजय।
अत्यद्भुतमिमं मन्ये नास्त्यस्य सदृशो रथः॥

यद्यपि यहाँ दुर्योधनकी शक्तिका वर्णन करनेके पीछे श्रीकृष्णका अभिप्राय दुर्योधनकी प्रशंसा करना अथवा अर्जुनको आतंकित करना नहीं है, उनकी मूलभावना मात्र इतनी ही है कि शत्रुके बलका अनुमान कम नहीं करना चाहिए; तथापि जिस सेनामें द्रोणाचार्य, भीष्म, कर्ण, जयद्रथ और दुर्योधन आदि महारथी विद्यमान हों, उसकी शक्ति विवादग्रस्त नहीं हो सकती। स्वयं पाण्डवोंने कौरव-सेनाकी शक्तिको अनेक स्थलोंपर स्वीकार किया है। ऐसी स्थितिमें दूरदर्शी कृष्णने भलीभाँति विचार किया कि किस पक्षको उनकी मित्रता और सहायता की अधिक अपेक्षा है और तय पाया कि पाण्डव ही उनको सहायताके अधिकारी हैं, क्योंकि उनका पक्ष सत्य और न्यायका पक्ष है।

भलीभाँति सोचकर की गयी इस मित्रतामें कोई द्विविधा या दुराव नहीं, प्रत्युत प्रतिक्षण मित्रके हितचिन्तन और कल्याणकी कामना है। इसी कामनासे वे पाण्डवोंके दूतके रूपमें

हस्तिनापुर जाते हैं। यद्यपि सदाशयतापूर्ण सन्धिके पूर्वप्रस्ताव अस्वीकृत हो चुके हैं, दुर्योधनकी नीयत भी अनेक अवसरोंपर स्पष्ट हो चुकी है; तथापि कृष्ण शान्तिस्थापनकी आखिरी चेष्टामें प्रवृत्त होते हैं। इस चेष्टाके खतरे स्पष्ट हैं। ऐसा नहीं कि उन्हें इन खतरोंका ज्ञान न हो, वे स्वयं जानते हैं और युधिष्ठिर तथा अर्जुन आदि सभी पाण्डव बार-बार खतरोंकी ओर संकेत कर उन्हें इस चेष्टासे विरत करना चाहते है। किन्तु कृष्णका निश्चय अडिग है। उनका तर्क स्पष्ट हैं। वे कहते हैं कि इस सन्धि-प्रस्तावसे सभी लोग जान जायेंगे कि शान्तिकामी पाण्डव युद्धके लिए दोषी नहीं हैं, विवशताकी स्थितिमें उन्हें युद्ध लड़ना पड़ रहा है।

कृष्णका यह सन्धि-प्रस्ताव राजनीतिक और कूटनीतिक धरातलपर कितना सफल है, इसे बतलानेकी आवश्यकता नहीं। हस्तिनापुर जानेके पूर्व वे सभी पाण्डवोंको बारी-बारीसे बुलाते हैं और उनकी भावनाओंसे अवगत होते हैं। महाभारतके उद्योगपर्वमें उपलब्ध यह वार्ता अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसमें स्पष्ट संकेत है कि सन्धि प्रस्ताव लेकर जानेके पूर्व कृष्ण वार्ताके भविष्यका आभास दे देते हैं और प्रकारान्तरसे पाण्डवोंके मानसको युद्धके लिए तैयार कर देते हैं।

हस्तिनापुरमें उनका आचार-व्यवहार और उनके भाषण राजनीतिके लिए अनुकरणीय हैं। दुर्दान्त कौरव-सभामें अकेले जाना और दुर्योधनकी साम, दाम, दण्ड और भेदकी सभी नीतियोंको विफल कर सकुशल लौट आना उनकी अद्भुत निर्भीकता, निर्लोभता, तार्किक-शक्ति और प्रत्युत्पन्नमतित्वका परिचायक है। पहुँचनेके साथ ही वे दुर्योधनका मानभंग करनेके लिए उस पर आघात करते हैं, उनके स्वागत सत्कार और यहाँतक कि उसके भोजनका तिरस्कार कर देते हैं और कारण पूछनेपर बतलाते हैं:

कृतार्था भुञ्जते दूताः पूजां गृह्णन्ति चैव ह।

और--

संप्रीति भोज्यान्यन्नानि आपद्भोज्यानि वा पुनः।
न च संप्रीयसे राजन् न चैवापद्गता वयम्॥

(उद्योगपर्व, ९१वाँ अध्याय)

अर्थात् दूत कृतकार्य होने पर ही भोजन ग्रहण करते हैं। वैसे भी किसीके घर भोजन प्रीतिकी स्थितिमें अथवा आपत्तिकालमें ही करना चाहिए। दोनोंमें से कोई स्थिति कृष्णके साथ नहीं है, अतः वे दुर्योधनका आमन्त्रण दृढ़तापूर्वक अस्वीकार कर देते हैं। इसी प्रकार वे दुर्योधनके यहाँ टिकना अस्वीकार कर विदुरका अतिथि होना स्वीकार करते हैं, यह उनकी अन्तर्दृष्टि और नीतिमत्ताका संकेतक है। उन्होंने ठीक ही अनुमान लगाया था कि शत्रुपक्षमें विदुरसे बड़ा पाण्डवोंका और उनका अपना हितचिंतक कोई दूसरा नहीं है।

अद्भुत वाक्चातुर्यसे समन्वित कृष्णने पाण्डवोंका पक्ष इस खूबीके साथ प्रस्तुत किया कि दुर्योधनके अतिरिक्त अन्य सभी महारथियोंने कृष्णका प्रस्ताव मस्तक झुकाकर स्वीकार कर लिया। सबने मन ही मन दुर्योधनकी हठवादिताकी निन्दा की और पाण्डवोंके प्रति सहानुभूति व्यक्त की। अन्तिम क्षणतक कृष्ण समझानेका प्रयत्न करते हैं, किन्तु दुर्योधन जब यह कह

देता है कि बिना युद्धके वह सुईके अग्रभागभर भूमि पाण्डवोंको देनेके लिए तैयार नहीं, तव कृष्ण युद्धकी घोषणा करके लौट आते हैं।

इस वृत्तान्तके वर्णनका उद्देश्य मात्र इतना दिखलाना है कि भक्तके हितके लिए कृष्ण मानापमान, यहाँतक कि प्राणकी भी परवाह नहीं करते। युद्धके दौरान वे छायाकी भाँति सदैव अर्जुनके साथ रहते हैं और अहर्निश उनकी हित-चिन्ता करते हैं। एक स्थानपर वे स्पष्ट घोषणा कर देते हैं :

न हि दारा न मित्राणि ज्ञातयो न च बान्धवाः।
कश्चिदन्यः प्रियतरः कुन्तीपुत्रान्ममार्जुनात् ॥
अनर्जुनमिमं लोकं मुहूर्तमपि दारुक।
उदीक्षितुं न शक्तोऽहं भविता न च तत् तथा ॥
अहं विजित्य तान् सर्वान् सहसा सहय-द्विपान्।
अर्जुनार्थे हनिष्यामि सकर्णान् ससुयोधनान् ॥

(महाभारत द्रो० प० प्रतिज्ञापर्व, ७९वाँ अध्याय)

दारा-मित्र, जाति-बान्धव सबसे अधिक प्रिय अर्जुनके ऊपर संकट आनेकी स्थितिमें कृष्ण क्या मूकद्रष्टा रह सकते हैं ? अर्जुनकी रक्षाके लिए आवश्यकता पड़नेपर दुर्योधन और कर्णसहित सारी कौरव-सेनाके अपने हाथों वधकी यह घोषणा उनकी भक्त-हित-तत्परताकी परिचायिका है।

ध्यान देनेकी बात यह है कि यह घोषणा अर्जुन या किसी पाण्डवोंके सामने नहीं की जाती, रात्रिके एकान्तमें सबके सो जानेके वाद दारुकके समक्ष कृष्ण अपने ये उद्गार व्यक्त करते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि कितने निर्मल और शुद्ध हृदयसे कृष्ण अर्जुनके हितमें प्रवृत्त हैं। यही नहीं, अभिमन्युके वधके वाद अर्जुनसहित सारी पाण्डव-सेना जब शोकाकुल हो विलाप करती है और शोकमिश्रित क्रोधके वशीभूत होकर अर्जुन अगले दिन सूर्यास्तके पूर्व सिन्धराज जयद्रथके वधकी घोषणा करते हैं, श्रीकृष्ण उनके संकल्पकी पूर्तिके लिए चिंतित हो जाते हैं और सबके सो जानेके बाद अर्धरात्रिमें शिवका निशीथ-पूजन और अर्जुनके विजयके लिए प्रार्थना करते दिखलायी पड़ते हैं।

एक सच्चे शुभचिन्तक मित्रकी भाँति वे अर्जुनकी सहायताका एक भी संभव अवसर छोड़ते नहीं। भीषणतम आपत्तिके बीच, अविरल बाणवर्षाके बीच वे अर्जुनका साथ ही नहीं देते, अपितु आगे होकर स्वयं भी प्रहार सह लेते हैं। कृष्ण द्वारा अर्जुनका सारथित्व स्वीकार करना वस्तुतः इस बातका प्रतीक है कि भक्तके हितके लिए भगवान् छोटेसे छोटा कार्य करनेके लिए भी तत्पर रहता है और संकटके समय आगे आकर भक्तके ऊपर किये गये प्रहारोंको स्वयं झेल लेता है। महाभारतके अनेक प्रसंगोंमें कृष्णके इस भक्तवत्सल स्वभावको देखकर सहसा रोमांच हो उठता है और मन भक्तिपूर्वक उनके चरणोंमें नतमस्तक हो जाता है।

●

श्रीकृष्ण और उनका पुरुषार्थ

सुश्री कल्पलता पाण्डेय

★

अनादिकालसे परम्परा चली आ रही है कि जब भी पृथ्वी अत्यन्त आतंकित एवं असंख्य पापोंका भार वहन करनेमें असमर्थ हो जाती है, तो उस समय उसकी निरीहतासे प्रभावित होकर करुणावश परमपिता उसे दयादान करते हैं। फलस्वरूप ऐसे तेजःपुंजका पृथ्वीपर अवतरण होता है जिसके तेजसे पृथ्वीका भयरूप अन्धकार-पटल सदाके लिए अभयके सुनहरे उषःकालमें परिवर्तित हो जाता है! जब भी पृथ्वीपर पाप, हिंसा, अन्याय अपनी चरम सीमापर पहुँच जाता है, तब उसके हनन-हेतु ईश्वर इसे आकर बचाता है और समय-समयपर स्वयं अनेक रूपोंमें अवतरित होकर पृथ्वीके समस्त पाप समाप्त कर डालता है।

श्रीकृष्णका जब प्राकट्य हुआ, उस समय भी पृथ्वीके करुणाभरे नेत्र भगवान्‌की ओर उठे थे। उस समयका महाप्रतापी, किन्तु दुष्ट राजा तथा स्वयं कृष्णका मामा कंस बहुत ही क्रूर शासक था। प्रजा उससे अत्यन्त भयभीत एवं असंतुष्ट थी। जब श्रीकृष्णका जन्म हुआ, उसी समय यह भविष्यवाणी हुई थी कि इसीके द्वारा तुम्हारी मृत्यु होगी। कंसने उन्हें मारनेके अनेक प्रयत्न किये, लेकिन कृष्ण तो आखिर दुष्टदलन ही थे! उन्होंने कंसकी एक न चलने दी। कंसके द्वारा भेजी गयी पूतना नामक राक्षसीको तो कृष्णने अपनी उस नन्हीं-सी अवस्थामें ऐसे ही मार डाला, जैसे कोई अत्यन्त साधारण कार्य हो। गोकुलकी त्रस्त जनताको कृष्णने आश्वासन दिया। ज्यों-ज्यों कृष्ण बड़े होते गये, कंस अपने शत्रुको समाप्त करनेके लिए तीव्र प्रयत्न करता गया। किन्तु सब व्यर्थ! कंसके राज्यके अनेक महाबलवान् वीर योद्धाओंको कृष्णने अपने चातुर्य तथा बलसे समाप्त कर डाला।

जब कंसने कृष्णकी मल्लविद्याकी कीर्ति सुनी, तो उसने उन्हें अक्रूर द्वारा मथुरा बुलवा भेजा। वहाँ भी कृष्ण बड़े आत्म-विश्वासके साथ भ्रमण करते रहे। सभामें जाकर प्रचण्ड धनुष भंग कर डाला। यह सब देखकर कंसने चाणूर और मुष्टिक नामक मल्लोंको कृष्णके साथ युद्ध करनेको भेजा। किन्तु कृष्णने उन्हें तथा कंस द्वारा छोड़े गये कुवलयापीड नामक हाथीको अत्यन्त सरलता एवं निश्चिन्ततासे समाप्त कर दिया! कृष्णका यह सब पराक्रम देखकर कंसका मस्तिष्क चकराने लगा। कृष्णने उसे सिंहासनसे खींचकर नीचे पटका, उसका भी वध कर डाला और राजसिंहासनपर कंसके पिता उग्रसेनको प्रतिष्ठित कर दिया।

इसी प्रकार कृष्णने स्वयंके ही पुरुषार्थ द्वारा जरासंधका भी वध किया, जो कंसके समान ही दुष्ट, धृष्ट एवं अविनीत था। जरासंधके बाद कृष्णने सुदर्शनचक्रसे शिशुपालका वध किया। बादमें शाल्व, दन्तवक्र तथा विदूरथका भी वध कर डाला!

कृष्ण लोकरंजक भी थे। उन्होंने समय-समयपर व्रजके सीधे-सादे गोप-गोपियोंकी भी रक्षा की है। एकबार देवाधिदेव इन्द्रने क्रोधाभिभूत होकर व्रजमें इतनी जलवर्षा की कि सम्पूर्ण

व्रज जलमग्न हो गया, किन्तु वर्षाकी निरन्तरतामें तनिक भी व्यवधान नहीं हुआ। यह देखकर गोप-गोपिकाएँ दौड़ी-दौड़ी कृष्णके पास आयीं! कृष्ण भी ठहरे भक्तवत्सल, तुरन्त ही दौड़ पड़े अपने बन्धु-बान्धवोंके रक्षा-हेतु और उन्होंने देखते-देखते गोवर्धन पर्वतको कनिष्ठिकापर उठा लिया। अन्तमें स्वयं इन्द्रने ही भगवान् श्रीकृष्णसे आकर क्षमा माँगी और इस प्रकार वर्षा बन्द हुई।

कृष्णके पुरुषार्थका लोकरंजक स्वरूप इतिहासके पन्नोंमें महाभारतमें आज भी प्रकाशमान है। कृष्णने अनेक अन्यायियोंका हनन किया। जयद्रथका वध करवाया, जो परम कुटिल था। कई दुष्ट राजाओंको मारकर अनेक अबलाओंकी रक्षा की। महाभारतके युद्धमें कृष्णने जिस पुरुषार्थ एवं कूटनीतिका परिचय दिया, वह अविस्मरणीय है! महाभारतमें पाण्डवोंकी विजयका मुख्य श्रेय कृष्णको ही है। जब उन्होंने अर्जुनका आत्मविश्वास क्षीण होते देखा, तभी कृष्णने उन्हें गीताका उपदेश दिया और पुनः युद्धके लिए प्रेरित किया। युद्धमें भी कृष्णने अर्जुनको कुशलतापूर्वक युद्ध करनेको कला बतायी। अर्जुनका प्रसिद्ध धनुष गाण्डीव भी अप्रत्यक्ष रूपसे कृष्णकी ही शक्तिसे कार्य कर रहा था। अन्तमें बुद्धि-कौशल और बलके ही कारण युद्धमें पाण्डवोंकी विजय हुई और कौरवोंका नाश हुआ!

इस प्रकार कृष्णने अवतार लेकर पापों और अनाचारोंसे आकण्ठ-मग्न पृथ्वीको उबार कर पुनः अपने पुण्य-पुरुषार्थसे सदाके लिए भयरहित कर दिया।

कहाँ वंशी तेरी घनश्याम!

आचार्य श्री गंगाधर मिश्र

कहाँ वंशी तेरी घनश्याम!
चंचल मन मृग-सा मानव को
भटकाता बेकाम।
स्वर का रस नर भूल गया है
सबमें चुभ दुःशूल गया है
भर दो सबमें मधुर भाव,
सब पायें फिर आराम।
ऐक्य-सुधा का निर्झर झर-झर
सरस करे विश्वास अनश्वर
पूर्ण सफल हो मानवता,
बन जाये भव सुख-धाम।

रामचरित-मानस : एक मनोवैज्ञानिक अध्ययन

डाक्टर देवराज उपाध्याय

★

तुलसीमें तत्कालीन साहित्यिक प्रवृत्तियोंमें अनेक नयी क्रान्तिकारी प्रवृत्तियोंके समावेशके लिए पर्याप्त साहस था। उन्होंने संस्कृतके स्थानपर जन-भाषामें लिखा। उन्होंने इस बातका दृढ़ निश्चय कर लिया कि वे वैसी स्तुतियाँ नहीं लिखेंगे, जैसी कि अन्य कवि लिखते थे। अपनी कविताके वर्ण्य-विषयके रूपमें उन्होंने राम और उनके कार्योंको चुना। उनकी साहित्यिक कृतियाँ ऐसे लोगोंके लिए हैं, जो पढ़नेके इतने अभ्यस्त नहीं होते, जितने कि सुननेके। निजी जीवनकी अपेक्षा सामूहिक जीवनके अधिक अभ्यस्त होते हैं। इस प्रकार हम पाते हैं कि अनुभूतियों और भावनाओंकी अभिव्यक्तिमें तुलसी अपना सानी नहीं रखते। लेकिन उनकी कृतियोंमें अन्तरङ्ग वार्तालाप और आधुनिक उपन्यास-लेखकों जैसी मनोवैज्ञानिकता नहीं है। आजकल भी तबले और हारमोनियमके साथ रामचरित-मानसका गायन अधिक लोकप्रिय है और लोगोंपर उसका अधिक प्रभाव पड़ता है। किसी वक्ताकी साहित्यिक आलोचना और मनोवैज्ञानिक व्याख्यापर न तो कोई ध्यान देता है और न उसका अधिक प्रभाव पड़ता है।

लेकिन एक बड़ी संख्यामें अब पाठक बदल गये हैं। धर्मके अतिरिक्त अन्य अनेक प्रकारके नये विज्ञान विकसित हो गये हैं, जो अपने पृथक्-पृथक् सिद्धान्तोंका प्रतिपादन करते और साहित्यक कृतियोंमें अभिव्यक्ति पाते हैं। मनोविज्ञान आधुनिकतम विज्ञान है और इसलिए अपने सिद्धान्तोंका जोर-शोरके साथ प्रतिपादन करता हैं और साहित्यिक क्षेत्रमें अभिव्यक्ति प्राप्त करनेका प्रयत्न करता है। आधुनिक पाठकको वर्तमान मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियों, विशेषकर फ्रायड, एडलर और युङ्गके सिद्धान्तोंका ज्ञान हो चुका हैं। यह तो सम्भव है कि उसका ज्ञान केवल ऊपरी हो और उसे 'सब्लीमेशन', 'इनफीरियोरिटी काम्प्लेक्स' और अपने तर्कोंकी पुष्टिके लिए कुछ तरीकोंका ज्ञान हो। लेकिन इस थोड़ेसे ज्ञानसे भी उसका दृष्टिकोण बदल गया है। अब पाठक एक मनोवैज्ञानिक जीव बन गया है और रामचरित-मानसमें भी वैज्ञानिकताके दर्शन करना चाहता है। तुलसीकी प्रतिभाको इस बातका श्रेय प्राप्त है कि ऐसे पाठकको भी निराश नहीं होना पड़ता।

रामचरित-मानसका मुख्य विषय है भक्ति। मानसका प्रत्येक पृष्ठ और पंक्ति उससे ओत-प्रोत हैं और सामान्य पाठकको भी सरलतासे उसकी झलक मिल जाती है। १७वीं और १८वीं शताब्दीमें समाजका प्रत्येक वर्ग भक्तिभावनासे ओत-प्रोत हो गया था, विशेषकर निचला वर्ग। लोगोंको भक्तिसे ओत-प्रोत साहित्यका अनुशीलन करनेमें कोई कठिनाई नहीं होती थी। तुलसीने पाठकोंमें भक्ति-भावना जगाने और उसकी अभिवृद्धिके लिए भी प्रयत्न किया और वे अपने इस प्रयत्नमें सफल रहे। कमसे कम अवचेतन रूपमें तो वे अपने

प्रयत्नमें निश्चित रूपसे सफल हुए। मैं यहाँ 'अवचेतन' रूपमें इन शब्दोंका प्रयोग साधारण अर्थोंमें ही कर रहा हूँ, अर्थात् बिना विशेष प्रयत्नके इस अर्थमें, फ्रायड द्वारा दिये अर्थमें नहीं। यदि उन्हें अपनी इस भावनाका ज्ञान था तो वह केवल इतना ही था, जितना कि सांस लेनेका होता है, जिसका व्यक्तिको तबतक कोई पता नहीं चलता जबतक कि उसमें कोई अवरोध न उत्पन्न हो।

अब मनोविज्ञानके ज्ञानसे सम्पन्न पाठक रामचरित-मानसको पहलेसे बिलकुल भिन्न प्रकारसे पढ़ता है या उसे पढ़ना पड़ता है। सम्भव है कि इस प्रकारके अध्ययनसे रामचरित-मानसमें इतनी अधिक मनोवैज्ञानिक सामग्री न प्राप्त हो, जितनी कि आधुनिक उपन्यासोंमें प्राप्त हो सकती है। लेकिन ऐसे अध्ययनसे जो कुछ सामग्री मिलती है, उससे तुलसीकी प्रतिभा और ज्ञानका उजागर हो जाता है। हम एक ऐसे समयपर, जब कि व्यक्तिगत सूझ-बूझके अतिरिक्त मनुष्यकी मनोभावनाओंके अध्ययनका और कोई साधन उपलब्ध नहीं था, तुलसीके सूक्ष्म मनोविश्लेषणसे आश्चर्यचकित रह जाते हैं। शेक्सपियरका जन्म फ्रायडसे दो सौ वर्ष पूर्व हुआ था। लेकिन हैमलेट और ऑथेलो के अध्ययनसे मनोवैज्ञानिक सामग्री 'ज्यॉमेट्रिकल प्रोग्रेशन' (१. २. ४. ८) में प्रकाशमें आ रही है। तुलसीका भी ऐसा ही अध्ययन करना अभी शेष है और एक तीव्र तथा सूक्ष्मबुद्धि द्वारा प्रकाशमें आनेकी प्रतीक्षामें है।

रामचरितमानसमें प्राप्त मनोविश्लेषणके सकारात्मक और नकारात्मक पक्षोंका यहाँ संक्षेपमें उल्लेख कर देना असंगत नहीं होगा। तुलसीके काव्यमें सकारात्मक मनोविज्ञान प्रच्छन्न तथा अवचेतन रूपमें भक्तिके रूपमें प्रवेश कर गया है। मनोवैज्ञानिक दृष्टिसे भक्ति बच्चेको पूरी तरह अपने माता-पितापर निर्भर रहनेकी भावनाका ही एक विकसित रूप है। बाल्यावस्था-में बच्चा जब कि वह अपनी जैविक आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिए पूरी तरह अपने माँ-बाप पर निर्भर रहता है, यह अनुभव करके अत्यन्त प्रफुल्ल होता है कि वे उसकी आवश्यकताओं-को तुरन्त पूरा कर देते हैं। उसकी दृष्टिमें माता-पिता सर्वज्ञानी, सर्वशक्तिमान् और सर्वव्यापी होते है। जब वे प्रसन्न और अच्छे मूड़में होते हैं, तो इतने दयालु और उदार होते हैं कि उसकी कोई सीमा नहीं होती। अन्य समयोंपर वे इतने दूर हो जाते हैं कि वे बच्चेकी आजीविका भी उससे छीन लेते हैं। उनके मस्तिष्कमें यह विचार बादमें आता है कि बच्चेका अपने माता-पितासे एक पृथक् अस्तित्व भी है और वह स्वतन्त्र रूपसे जीवनयापन कर सकता है।

भक्ति क्या है? वह पूर्णतया ईश्वरपर निर्भरताकी स्थितिका नाम है। अन्य शब्दोंमें वह फिरसे बालक बन जानेकी स्थिति है। मनोवैज्ञानिक रूपसे भक्त वह है, जो स्वयंको वयस्क जीवनका उत्तरदायित्व वहन करनेमें असमर्थ पाकर सर्वशक्तिमान् पिता अर्थात् ईश्वरकी ममतामयी छत्रच्छाया प्राप्त करनेकी कामना करता है। उसको उत्पन्न करनेवाला सांसारिक पिता, अपने सारे प्रयत्नोंके बावजूद उसकी वे मांगें पूर्ण नहीं कर पाता जिसको पूरा करना उसके सीमित साधनोंको दृष्टिसे सम्भव नहीं है। इसलिए एक वयस्क भक्त ऐसे ईश्वरीय पिता की तलाशमें रहता है, जो कि उसकी सारी मांगें पूरी कर सके। तुलसीको एक ऐसा वयस्क माना जा सकता है जो पुनः शैशवावस्थामें पदार्पण कर गये हैं और सच्चे मनसे एक दयामय

ईश्वरीय पिताका रक्षण प्राप्त करनेकी कामना कर रहे है : 'तुम मेरी माँ हो और मैं तुम्हारा बेटा !' रामचरितमानसमें तुलसीने बार-बार यही भाव दोहराया है।

स्वयंको ईश्वरकी छत्रच्छायामें रखकर या दूसरे शब्दोंमें उसके साथ एकरूप होकर कवि और बालकरूप तुलसी अजेय हो जाता है और स्वयंको ईश्वर ही मानने लगता है। इसीलिए कहा है : **राम ते अधिक रामकर दासा ।** अर्थात् रामका दास रामसे भी बढ़कर होता है।

भक्तिका अर्थ ईश्वरमें आसक्ति है और इसके अनेक रूप होते हैं। ईश्वरके साथ उसी प्रकार स्नेह किया जा सकता है, जिस प्रकार कि कोई माता अपने बालकसे स्नेह करती है या कोई पिता अपने बच्चेसे अथवा कोई पत्नी अपने पतिसे; या इसके विपरीत जिस प्रकार कोई बालक अपनी मातासे, बच्चा अपने पितासे अथवा पति अपनी पत्नीसे। लेकिन शत्रुताके रूपमें भक्तिका भी एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। रावण भी एक भक्त था, लेकिन उसकी भक्ति शत्रुताके रूपमें थी और जब मुक्ति प्राप्त करनेका समय आया तो उसे हनुमान् आदि अन्य भक्तोंकी अपेक्षा तरजीह दी गयी। आधुनिक मनोवैज्ञानिक भाषामें यह 'अभिभक्ति' (शत्रुके रूपमें भक्ति) दो विरोधी गुणोका संघर्ष कहलायेगी। मनोवैज्ञानिक दृष्टिसे परस्पर विरोधी दो भावनाएँ साथ साथ रहती हैं जो मौलिक रूपमें एक ही हैं। प्रेम और घृणा मौलिक रूपमें एक ही प्रकारकी भावनाएँ हैं। क्या इसका यह अर्थ नहीं कि तुलसी जैसे भक्त-कवि मनोविज्ञानके क्षेत्रमें उसी ऊँचाईतक पहुँच जाते हैं, जिस ऊँचाईतक कि आधुनिक मनोविश्लेषक पहुँच गया है; यद्यपि यह सही है कि तुलसीको स्वयं इस बातका ज्ञान नहीं था और उन्होंने उसे प्रणालीबद्ध भी नहीं किया था।

तुलसीके महाकाव्य रामचरितमानसके शीर्षकपर ही विचार कीजिये। किसी कहानी, उपन्यास अथवा महाकाव्यका शीर्षक बिना भलीभाँति विचार किये नहीं दिया जाता। वह उनका एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अंग होता और उनके सौन्दर्यको प्रभावित करता है। साथ ही वह रचयिताके मस्तिष्ककी भी एक झलक प्रदान करता है और पाठकोंको उसकी विचार-धारा समझनेमें समर्थ करता है। जहाँतक मैं जानता हूँ, रामके जीवनपर आधृत किसी भी साहित्यिक कृतिके शीर्षकमें चरित और मानस ये दो शब्द कभी प्रयुक्त नहीं किये गये। वाल्मीकि-रामायण, अध्यात्म-रामायण, हनुमन्नाटक, रामचन्द्रिका आदि शीर्षकवाले ग्रन्थ तो मिलते हैं, लेकिन एक क्रान्तिकारी व्यक्ति होनेके कारण तुलसीने प्राचीन परम्परा नहीं अपनायी और अपने लिए एक नया मार्ग चुना। उन्होंने अपने महाकाव्यको 'रामचरितमानस' कहा और इस प्रकार लगभग उस खतरनाक सीमातक पहुँच गये, जिसे आधुनिक शब्दोंमें 'प्राण' कहा जाता है। तुलसी मनोविज्ञानके क्षेत्रमें प्रवेश ही कर रहे थे। इस बातसे इनकार नहीं किया जा सकता कि मंथरा, कैकेयी, भरत और हनुमान् आदि पात्रोंके कार्योंका कारण सरलतासे मनोविश्लेषण (साइको-एनालिसिस)से सम्बद्ध 'इनफोरियोरिटी काम्प्लेक्स', 'सब्लीमेशन' और 'रियेक्शन फारमेशन' कहा जा सकता है।

●

कोउ न रामसम जान जथारथु

श्री चुनहरीलाल शर्मा
बी० ए०, साहित्यरत्न

★

'कोउ न रामसम जान जथारथु' यह अर्धाली रामचरितमानसके अयोध्याकांडमें दोहा २५३के पश्चात् ५वीं है। वशिष्ठजी कहते हैं कि नीति, प्रीति, परमार्थ और स्वार्थ, इन्हें रामके समान कोई और यथार्थतः नहीं जानता। अर्थात् जैसा चाहिए, वैसा नहीं जानता। प्रस्तुत लेखमें इन्हीं बातोंपर प्रकाश डालनेकी चेष्टा की जायगी।

जीव-जगत्में, मुख्यतः मानव-समाजमें धर्मस्थापना ही भगवान्के आविर्भाव और विशेष ईश्वरीय शक्तिके प्रकाशनका मुख्य उद्देश्य होता है। जब धर्म अधर्म द्वारा अतिमात्रामें अभिभूत और विपर्यस्त हो जाता है तथा मानव स्वार्थ, हिंसा और घृणाके वशीभूत होकर, सत्य, न्याय और धर्मका गला घोंट देता है, उसी समय भगवान् आविर्भूत होते और धर्मकी स्थापना कर मानवताकी विजय-वैजयन्ती फहराते हैं। धर्म और अधर्मका संग्राम जगत्में सतत चलता रहता है और अन्तमें विजय अधर्मपर धर्मकी ही होती है। यही विश्वका विधान है। धर्मके प्राधान्यपर ही जगत्की स्थिति निर्भर करती है।

भगवान् रामकी पावन-गाथा मानवको मानव-जीवनके उच्चतम आदर्शकी दीक्षा प्रदान करती है। कर्मानन्दके भीतर ब्रह्मानन्दका पथ-प्रदर्शन करती है। मनुष्यके हृदयकी जड़ता नीचता, शठता, क्षुद्रताको हटा एवं पापोंकी जघन्यताको धोकर उसमें दिव्य-जीवनकी चेतनाको जाग्रत् कर देती है। सुदूर अतीतकी एक निष्प्राण कथाकी भाँति नहीं, वरन् एक नूतन सभ्यता, नवीन भारतके पुनर्निर्माणके लिए एक सन्देश और एक सत्ता रखते हुए जीवन-पथके रूपमें यह रामकथा हमारा मार्गदर्शन करती है। यह ठीक है कि भारत इस समय पतनकी अवस्थामें है, किन्तु तब भी हमारा विश्वास है कि उसका अधःपतन उसी दिन आरम्भ हुआ, जब उसने अपने आदर्श भगवान् रामको विस्मृत कर दिया। किसी पाश्चात्य राष्ट्रके अनुकरणसे नहीं, भगवान् रामकी इस चेतनासे ही हमारा उद्धार होगा। भगवान् रामकी कथा और उनके चरित्रका जितना ही चिन्तन किया जायगा, उतना ही हमारा मंगल होगा। सचमुच यह मानव-जीवन राम-दर्शनके बिना निरर्थक है। रामदर्शन उभय अर्थमें है।

यश्च रामं न पश्येत्तु यं च रामो न पश्यति।
निन्दितः स भवेल्लोके स्वात्माप्येनं विगर्हते॥

अर्थात् जिसे राम नहीं देखते वह लोकमें निन्दित है और जो रामको नहीं देखता, उसका भी जीवन निन्दित है।

भगवान् रामके किन आदर्श गुणोंके अङ्कनमें यह लेखनी प्रवृत्त हो ? उनकी कृतज्ञताका वर्णन किन शब्दोंमें किया जाय ? वे तो किसी तरह किये गये एक ही उपकारसे सन्तुष्ट हो जाते हैं और अपकार चाहे कोई सैकड़ों ही करे, उनमें से एक का भी उन्हें स्मरण नहीं रहता :

कथञ्चिदुपकारेण कृतेनैकेन तुष्यति।
न स्मरत्यपकाराणां शतमप्यात्मवत्तया॥

भगवान् रामका क्रोध और प्रसाद दोनों अमोघ हैं। वे एक आदर्श नीतिज्ञ, आदर्श राजा, आदर्श प्रेमी, उदार स्वभाववाले हैं। अथवा गोस्वामीजीके शब्दोंमें :

नीति प्रीति परमारथ स्वारथु।
कोउ न रामसम जान जथारथु॥

भगवान् राम ही धर्मनीति, राजनीति, प्रीति, परमार्थ और स्वार्थ सभीका यथार्थतः पालन करना जानते हैं। अन्य सभी अधूरा जानते हैं, यथार्थतः नहीं।

भगवान् रामने नीतिका उपदेश वनवास जानेके समय लक्ष्मणको, चित्रकूटमें भरतको, मृत्युके अन्तिम क्षणोंमें बालिको, युद्धके वातावरणमें रावणको तथा दूत बनकर जाते समय अङ्गदको नीतिका उपदेश दिया। लक्ष्मणको वन-गमनके समय दिया गया नीति-उपदेश इस प्रकार है :

राम बिलोकि बन्धु कर जोरें। देह गेह सब सन तृनु तोरें॥
बोले बचनु राम नय नागर। सील सनेह सरल सुखसागर॥
तात प्रेमबस जनि कदराहू। समुझि हृदयँ परिनाम उछाहू॥

मातु पिता गुरु स्वामि सिख, सिर धरि करहिं सुभायँ।
लहेउ लाभु तिन्ह जन्म कर, नतरु जन्म जग जायँ॥

× × ×

भवन भरतु रिपुसूदनु नाहीं, राउ बृद्ध मम दुखु मन माहीं।
मैं बन जाउँ तुम्हहि लेइ साथा, होइ सबहि बिधि अवध अनाथा॥

× × ×

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृपु अवसि नरक अधिकारी॥
रहहु तात असि नीति बिचारी।

इसी प्रकार भरतको चित्रकूटके दरबारमें नीतिका उपदेश दिया :

तात भरत तुम्ह धरम-धुरीना। लोक बेद बिद प्रेम प्रबीना॥

जानहु तात तरनि कुल रीती। सत्यसंध पितु कीरति प्रीती॥
समउ समाजु लाज गुरजन की। उदासीन हित अनहित मन की॥
तुम्हहि विदित सबही कर करमू। आपन मोर परम हित धरमू॥

अब रही राज-काजकी बात, सो उसके लिए देखें :

राज काज सब लाज पति, धरम धरनि धन धाम।
गुर प्रभाउ पालिहि सबहि, भल होइहि परिनाम॥

× × ×

सो तुम्ह करहु करावहु मोहू। तात तरनिकुल पालक होहू॥

अर्थात् राज्यका सब काम, लज्जा, प्रतिष्ठा, धम, धरणी, धन, धाम (घर) सबका पालन गुरुका प्रभाव, उनका अनुग्रह या उनकी प्रसन्नता ही स्वयं सब कार्य संभाल लेगी। गुरुकी प्रसन्नतासे तुम अवधमें और हम (सीता-लक्ष्मणसहित) वनमें सकुशल रहेंगे। भगवान् श्रीरामने भरतजीसे कहा :

मुखिया मुखु सो चाहिऐ, खान पान कहुँ एक।
पालइ पोषइ सकल अँग, तुलसी सहित बिबेक॥
राजधरम सरबसु एतनोई।

अर्थात् मुखिया मुखके समान होना चाहिए जो खाने-पीनेको तो एक है पर समस्त अंगोंका विवेक-सहित पालन-पोषण करता है। राजधर्मका सर्वस्व इतना ही है।

भाव यह है कि मुख सब भोग्य स्वयं खाता है, पर जिस अंगके लिए जो चीज जितनी मात्रामें चाहिए, उसीके अनुसार उस अंगको वह देता है। 'सहित विवेक'का तात्पर्य यह है कि जिस अंगको जिस रसकी जितनी आवश्यकता है, उतना ही उसे देता है। यह नहीं जिसे अधिक चाहिए, उसे कम और जिसे कम चाहिए, उसे अधिक देता हो, वह यथायोग्य वितरण करता है।

इसी प्रकार भगवान् रामने बालिको भी नीतिकी बात बतलायी। बालिने कहा था :

धर्म हेतु अवतरेहु गोसाईं। मारेहु मोहि ब्याधकी नाईं॥

इसपर भगवान् रामने कहा कि 'यदि मैं तुम्हें शत्रु समझता तो तुमसे युद्ध करता और युद्धमें सम्मुख ही मारता। किन्तु मैंने तो तुम्हें महान् पापका दण्ड दिया जो शास्त्र-विहित है :'

भगवान् रामने बालिको समझाते हुए उससे कहा कि 'युद्ध शत्रुसे किया जाता है और दण्ड अपराधीको दिया जाता है। अतएव तुम अपराधी हो, उसीका दण्ड तुमको दिया गया है।' यही नहीं, क्या अपराध है, यह भी बता दिया :

अनुज बधू भगिनी सुत नारी। सुनु सठ कन्या सम ए चारी।
इन्हहि कुदृष्टि बिलोकइ जोई। ताहि बधें कछु पाप न होई।

श्रीरामकी शत्रुहितकारिणी नीति

अंगदको दूत बनाकर लङ्का भेजा जा रहा है। श्रीरामने अपनी नीति उन्हें समझायी दो शब्दोंमें : **काजु हमार तासु हित होई।** हमारा काम हो, यह तो दृष्टिकोण है; किन्तु जहाँतक सम्भव हो, शत्रुका भी भला हो। शत्रुका अहित कभी न हो :

बालितनय बुधि बल गुन धामा। लंका जाहु तात मम कामा॥
बहुत बुझाइ तुम्हहि का कहऊँ। परम चतुर मैं जानत अहऊँ॥
काजु हमार तासु हित होई। रिपु सन करेहु बतकही सोई॥

कृपाके निधान श्रीरामजीने अङ्गदसे कहा : 'बल, बुद्धि और गुणोंके धाम बालि-पुत्र तात ! तुम मेरे कामके लिए लङ्का जाओ। तुमको बहुत समझाकर क्या कहूँ ? मैं जानता हूँ, तुम परम चतुर हो। शत्रुसे वही बातचीत करना जिससे हमारा काम हो और उसका कल्याण हो।

श्रीराम शत्रुकी शक्तिसे अनभिज्ञ नहीं हैं और उसे उपेक्षणीय भी नहीं मानते। इसलिए जब अंगद लंकामें रावणके समीपसे लौटकर आते हैं तो रघुनाथजी उनसे पूछते हैं :

बालितनय कौतुक अति मोही। तात सत्य कहु पूछउँ तोही॥
रावनु जातुधान कुल टीका। भुज बल अतुल जासु जग लीका॥
तासु मुकुट तुम्ह चारि चलाए। कहहु तात कवनी बिधि पाए॥

रावणसे घोरयुद्धके समय भगवान् रामने नीतिका उपदेश किया :

सत्य सत्य सब तव प्रभुताई। जल्पसि जनि देखाउ मनुसाई॥
जनि जल्पना करि सुजसु नासहि नीति सुनहि करहि छमा।
संसार महँ पूरुष त्रिबिध पाटल रसाल पनस समा॥
एक सुमनप्रद एक सुमन फल एक फलइ केवल लागहीं।
एक कहहिं कहहिं करहिं अपर एक करहिं कहत न बागहीं॥

भगवान् रामने कहा : तुम्हारी सारी प्रभुता जैसा तुम कहते हो, बिल्कुल सच है; पर अब व्यर्थ बकवास न करो, अपना पुरुषार्थ दिखाओ। व्यर्थ बकवास करके अपने सुयशका नाश न करो। क्षमा करना, तुम्हें नीति सुनाता हूँ। संसारमें तीन प्रकारके पुरुष होते हैं : पाटल (गुलाब), आम और कटहलके समान। एक (पाटल) फूल देते हैं। एक आम फल और फूल दोनों देते हैं। और एक कटहलमें केवल फल ही लगते है। इसी प्रकार पुरुषोंमें एक कहते हैं, करते नहीं। दूसरे कहते हैं, करते भी हैं। और एक तीसरे केवल करते हैं, वाणीसे कहते नहीं।

इस प्रकार भगवान् रामकी नीतिका संक्षिप्त दिग्दर्शन कराया गया। शुक्राचार्य भी अपने 'नीतिसार'में कहते हैं कि रामके समान नीतिमान् राजा पृथ्वीपर न कोई हुआ और न कभी होना ही सम्भव है :

न रामसदृशो राजा पृथिव्यां नीतिमानभूत्।

(शुक्र० ४.६.१३४६)

इसीलिए पूज्यपाद गोस्वामी श्री तुलसीदासजी महाराज भी महर्षि वसिष्ठके शब्दोंमें कहते हैं :

नीति प्रीति परमारथ स्वारथु।
कोउ न राम सम जान जथारथु॥

(रामचरितमानस २.१५४.५)

नीतिके बाद प्रीतिका दिग्दर्शन भगवान् रामके जीवनमें यथार्थ रूपसे दृष्टिगोचर होता है। प्रेम जगत्में मानव, पशु, पक्षी वनस्पति तथा जड़ पदार्थोंसे भी सम्बद्ध है। मानवीय व्यक्तिके सभी स्तरोंपर यह एक सार्थक स्थान रखता है। प्रेमकी वास्तविक अनुभूति स्थूल तथा बहिर्मुख कामवासनाओंकी अतिक्रान्ति करनेपर ही होती है। पूज्यपाद गोस्वामीजीने 'विनय-पत्रिका'में भी लिखा है :

जानत प्रीति रीति रघुराई।
नाते सब होत करि राखत राम-सनेह सगाई॥ १॥
नेह निबाहि देह तजि दशरथ कीरति अचल चलाई।
ऐसेहु पितुते अधिक गीधपर ममता गुन गरुआई॥ २॥
तिय-बिरही सुग्रीव सखा लखि प्रानप्रिया बिसराई।
रन पर्यो बन्धु बिभीषण ही को सोचु हृदय अधिकाई॥ ३॥
घर गुरु गृह प्रियसदन सासुरे भइ जब जब पहुनाई।
तब तब कहँ सबरी के फलनि रुचि माधुरी न पाई॥ ४॥
सहज सरूप कथा मुनि बरनत रहत सुकुचि सिर नाई।
केवट मीत कहे सुख मानत बानर बन्धु बड़ाई॥ ५॥
प्रेम कनौडो राम सो प्रभु त्रिभुवन तिहुँ काल न भाई।
तेरौ रिनी हौं कह्यो कपि सों ऐसी मानिहै को सेवकाई॥ ६॥
तुलसी राम-सनेह सील सुनि जौं न भगति उर आई।
तो तोहि जनमि जनमि जाय जननी जड़ तनु तरुनता गँवाई॥ ७॥

भगवान् रामके समान प्रीतिका यथार्थ ज्ञाता और कोई नहीं है। वे देहसम्बन्धी नातों (माता पिता, भाई, पत्नी आदि) को छोड़ देते हैं, किन्तु प्रेमका नाता छोड़ नहीं सकते हैं। क्योंकि :

रामहि केवल प्रेम पिआरा। जानि लेउ सो जाननि हारा॥

भगवान्‌का कथन हैं कि जो स्त्री, पुत्र, वन्धु, प्राण और धनको त्यागकर मुझमें मन लगाये रहते हैं, उन भक्तोंको छोड़कर मैं शरीर या लक्ष्मी कुछ नहीं चाहता। भगवान्‌ने वानरोंसे यही कहा :

ताते मोहि तुम्ह अतिप्रिय लागे। मम हित लागि भवन-सुख त्यागे॥

वास्तवमें भगवान्‌को ऐसे ही भक्त प्रिय हैं। यथा :

जिन्हके हौं हित सब प्रकार चित नाहिन और उपाउ।
तिन्हहि लागि धरि देह करो सब डरौं न सुजस नसाउ॥

महाराज दशरथ रामजीके पिता थे। उनका रामजीसे पुत्रविषयक प्रेम था। उन्होंने सत्यकी रक्षाके लिए पुत्रका और पुत्रमें सत्यप्रेम होनेके नाते तनका त्याग किया। इधर जटायु पक्षी था। उससे देहसम्बन्ध न था। उससे पंचवटीमें प्रथम-प्रथम भेंट हुई तो दृढ़ प्रेम दरसाया। सीताजीकी रक्षामें गीधराजने त्रैलोक्यविजयी रावणसे लोहा लिया। उनके लिए आत्मसमर्पण कर दिया। उसने परहितके लिए देहका परित्याग कर दिया। प्रभु रामने पिताके प्रेमसे अधिक इस गुणको माना। इसीलिए कहना पड़ता है कि 'जानत प्रीति रीति रघुराई !'

●

संन्यासी और कर्मयोगी

जो कर्मका फल तो नहीं चाहता, किन्तु सदा कर्तव्य कर्मके अनुष्ठानमें लगा रहता है, वही संन्यासी है और वही कर्मयोगी है। अग्नि या अग्निहोत्रको छोड़ बैठने मात्रसे कोई संन्यासी नहीं कहला सकता। जिसने संकल्प या फल-कामनाका त्याग न किया हो, वह कोई भी क्यों न हो, कर्मयोगी नहीं कहा जा सकता।

●

श्राद्ध : ज्ञान-विज्ञानकी कसौटीपर

श्री गोविन्द नरहरि वैजापुरकर

★

आश्विनमासका कृष्णपक्ष पितृपक्ष या 'पितर-पख' कहलाता हैं। शास्त्रोंमें इसे 'महालय' कहते हैं। भाद्रपद पूर्णिमासे आश्विन अमावास्यातक १६ दिनोंके इस महालयमें अपने पिताकी मृत्युतिथिको प्रत्येक आस्तिक हिन्दू यथाशक्ति 'श्राद्ध'-कर्म सम्पन्न कर सभी पितरोंके प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त करता है। श्राद्ध कृतज्ञता-ज्ञापनका एक सर्वोत्तम प्रकार है। ८४ लाख योनियोंमें मानवके क्रमशः एक-एक कर सभी जीव पितर बन जाते हैं। उन सबके लिए श्राद्ध पर्यायतः विश्वात्माओंके प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन है। अतएव यहाँ उस श्राद्धके रूप, उसके प्रकार, उसके काल और कर्तव्यतापर शास्त्रीय एवं वैज्ञानिक दृष्टिसे प्रकाश डालना असामयिक न होगा।

सामान्य श्राद्ध और महालय

यह 'श्राद्ध' शब्द शास्त्रीय परिभाषामें एक 'योगरूढ' शब्द हैं। अर्थात् 'श्रद्धया दत्तं श्राद्धम्' इस यौगिक और 'पित्र्युद्देश्यक शास्त्रोक्त पिण्डदानादि कर्म'रूप रूढ दोनों शक्तियाँ मिलाकर 'श्राद्ध' शब्दका अर्थ होता है : पितरोंकी तृप्तिके लिए श्रद्धापूर्वक किया जानेवाला वेदोक्त ब्राह्मणपूजन, ब्रह्मार्पण (अन्नब्रह्म-समर्पण), पिण्डदानादि श्राद्धकल्पोक्त कर्मविशेष।

वैसे गृहस्थ नित्य जो पञ्चमहायज्ञ करता है, उसमें एक पितृयज्ञ भी है। एक प्रकारसे वह 'श्राद्ध' ही है, जो नित्य है। किन्तु योगी याज्ञवल्क्यने (याज्ञ० स्मृ० आचा० २१७-१८) सामान्यतः १३ श्राद्धके काल बताये हैं और उस-उस समय किये जानेसे वे श्राद्ध उस-उस नामसे प्रसिद्ध हैं। वे १३ काल निम्नलिखित हैं : १. अमावास्या (दर्श), २. अष्टका (मार्गशीर्ष, पौष, माघ, फाल्गुनके कृष्णपक्षोंकी सप्तमी, अष्टमी, नवमी तिथियाँ), ३. वृद्धि (नान्दी, शुभकर्मसे पूर्व) ४. कृष्णपक्ष, ५. दोनों अयन (उत्तरायण और दक्षिणायन) ६. द्रव्य (चावल आदिकी विपुल फसल होनेपर), ७. ब्राह्मण-सम्पत्ति (विद्वान् वैदिकके घर आनेपर) ८. विषुवत् (मेष और तुला संक्रमण), ९. सूर्य-संक्रान्तियाँ (मेषादि १२ संक्रमणके दिन), १०. व्यतीपात (वृद्धमनुके मतसे एकयोग—रविवारयुक्त अमावस्या, जब कि अश्विनी, मृगशिरा, आर्द्रा, आश्लेषा, श्रवण और धनिष्ठा नक्षत्रोंमें से कोई नक्षत्र हो) ११. गजच्छाया

(वह त्रयोदशी, जब सूर्य हस्त नक्षत्रपर और चन्द्र मघा नक्षत्रपर हो। बोधायन त्रयोदशीकी जगह अमावास्याके दिन यह योग मानते हैं), १२. ग्रहण (चन्द्र और सूर्यग्रहण), तथा १३. श्राद्धके प्रति रुचि (जिस दिन भी इच्छा हो जाय–भक्तिश्राद्ध)।

इनके अतिरिक्त माता और पिताकी मरण-तिथिको वर्षमें एकबार श्राद्ध करना पड़ता है।

प्रश्न होगा कि इन सभी श्राद्धोंमें महालयका तो कहीं नाम ही नहीं। तब वह बहुचर्चित 'महालय श्राद्ध' कहाँसे आ टपका? किन्तु गहराईसे सोचनेपर इसका सहज समाधान हो जाता है। श्राद्धके १३ कालोंमें ११वाँ गजच्छाया योग आश्विन कृष्णपक्षमें ही आता है, जो महालय या 'पितरपख' कहलाता है। ऐसी त्रयोदशी या अमावास्या, जिस दिन कन्याराशिपर (उत्तरा नक्षत्रका १ पाद, हस्तके ४ पाद और चित्रा नक्षत्रके २ पाद) और सूर्य और चन्द्र मघा नक्षत्रपर हो, मात्र इसी पक्षमें आती हैं।

इसके अतिरिक्त मनुस्मृति (३.२७३), वैदिक मन्त्र (पुरोनुवाक्या, ६), तत्तिरीय ब्राह्मण (२.१०.१ याज्या) में मघा नक्षत्रमें पितरोंके आवाहनका जो विधान है, वह गजच्छाया योगवाले मघा नक्षत्रको ही लक्ष्य कर है। इस तरह ये ग्रन्थ भी महालय-श्राद्धकी कर्तव्यताकी पुष्टि करते हैं।

सबसे प्रबल प्रमाण तो वृद्धमनुका निम्नलिखित वचन है जिसमें कहा गया है कि भाद्रपदका दूसरा पक्ष (अमान्त मानसे, पौर्णिमान्त मानसे आश्विन कृष्णपक्ष), जिसमें सूर्य कन्या-राशिपर रहता है, 'महालय' और 'गजच्छाया' कहा जाता है (गजच्छाया योगयुक्त तिथिवाला होनेसे यहाँ पूरे पक्षको ही 'गजच्छाया' कह दिया गया है) :

नभस्यस्यापरः पक्षो यत्र कन्यां व्रजेद् रविः।
स महालयसंज्ञः स्याद् गजच्छायाह्वयस्तथा॥

वृहन्मनु तो इससे भी आगे बढ़कर कहते हैं कि आषाढीसे पूर्णिमासे चार पक्षोंतक वर्षा, कीचड़ आदिके कारण गृहस्थों द्वारा समुचित हव्य-कव्य प्राप्त न होनेसे पितर अत्यन्त खिन्न-हो उठते हैं। फलतः इस पाँचवें पक्षमें शरदृतुमें अन्न एवं जलकी नितान्त आकांक्षा लगाये रहते हैं। अतः इसी पक्षमें उन्हें श्रद्धापूर्वक जो कुछ देना हो, गृहस्थको अवश्य देना चाहिए। बादमें कुछ देना 'का वर्षा जब कृषि सुखाने' कहावत ही चरितार्थ करेगा।

ब्रह्माण्ड-पुराण तो स्पष्ट कहता है कि भाद्रपद मासके कृष्णपक्ष (अमान्तमानसे, अर्थात् आश्विन कृष्णपंक्ष) में प्रतिदिन श्राद्ध करना चाहिए :

नभस्यकृष्णपक्षे तु श्राद्धं कुर्याद् दिने दिने।

किन्तु आजकी अत्यन्त भीषण महर्घतामें यह सम्भव कहाँ? अतएव शिष्टपरम्परानुसार एक दिन (पिताकी मरण-तिथिके दिन) यह महालय-श्राद्ध किया जाता है। उस दिन न हो सके तो अमावास्याके दिन करनेका विधान है। प्रतिपद्से अमावास्यातक कोई न कोई तिथि

पिताकी मरण-तिथि होती ही है। लेकिन पिताकी मरण-तिथि पूर्णिमा हो तो उसके लिए भाद्रपद पूर्णिमाको इस महालय-श्राद्धका विधान है। इसीलिए १६ दिनोंका महालय माना जाता है। इसके अतिरिक्त जीवत्पितृक व्यक्तिके लिए मृत अविधवा माताके श्राद्धके निमित्त इसी पक्षकी नवमी 'मातृनवमी' नामसे श्राद्ध-तिथि निर्धारित है। साथ ही महालयकी अमावास्याके दूसरे दिन जीवत्पितृक दौहित्रके लिए मृत मातामहके श्राद्धका विधान है। इसी प्रकार शस्त्रादि-हत, अग्निदग्ध आदिके लिए भी इसी पक्षमें विभिन्न श्राद्ध तिथियाँ-नियत हैं।

पिताके प्रतिसांवत्सरिक श्राद्धसे इस महालय-श्राद्धकी विशेषता यह है कि सांवत्सरिकमें केवल पिता, पितामह और प्रपितामहको ही आवाहित कर पिण्डदान किया जाता है जब कि महालयमें सभी आघ्रान्त पितरोंको आवाहित कर उनके उद्देश्यसे पिण्डदानादि होते हैं। अतएव किसी कारण सांवत्सरिक श्राद्धमें अन्तराय पड़ जाय तो भी महालय-श्राद्ध अवश्य करना चाहिए।

यह महालय श्राद्ध यों तो भाद्रपद पूर्णिमासे आश्विन अमावास्यातक ही किया जाना चाहिए। यदि इसमें किसी प्रकारकी अड़चन आ जाय और श्राद्ध न हो सके, तो वृश्चिक संक्रान्ति लगनेतक (प्रायः कार्तिक कृष्णतक) इसके करनेका विकल्प शास्त्रोंने कर दिया है: **यावद् वृश्चिकदर्शनम्।**

यों अपने पूरे साङ्गरूपमें 'श्राद्ध' एक याज्ञिक प्रयोग है जो 'श्राद्धकल्प' के अनुसार विशेष पद्धतिसे किया जाता है। इसमें कमसे कम दो ब्राह्मणोंके सविधि पूजनके साथ उन्हें ब्रह्मार्पण (अन्न-ब्रह्मका समर्पण), पिण्डदान एवं उनके लिए तिलतर्पण प्रमुख विधियाँ हैं। जहाँ ब्राह्मणोंकी सुविधा न हो, वहाँ अग्नि या गायको किंवा जलमें श्राद्धद्रव्यके निक्षेपका भी विकल्प शास्त्रोंने बताया है। अत्यन्त गरीबके लिए आश्वलायन गृह्यसूत्रकारने गायको घास खिलाने या अग्निमें उसे होमनेपर भी श्राद्धकी पूर्ति बतलायी है। जिससे यह भी संभव न हो सके, उसके लिए कहा है कि "वह जंगलमें जाकर काँखें ऊपर उठाकर जोर-जोरसे बोलकर सूर्यादि लोकपालोंको सुनाये और रोये कि 'मैं अत्यन्त निर्धन हूँ, अतः पितरोंको केवल नमस्कार करता हूँ।" किन्तु किसी भी प्रकार श्राद्धका लोप न किया जाय।

श्राद्धसम्बन्धी कुछ शंकाएँ

आजके भौतिकवादी युगमें श्राद्धके सम्बन्धमें तरह-तरहकी शंकाएँ उठाना उतनी आश्चर्यकी बात नहीं जितनी कि अध्यात्मप्रधान पौराणिक-युगमें इसी तरहकी शंकाएँ उठायी गयी और उनका समर्पक समाधान भी प्रस्तुत किया गया है।

पहली शंका पद्म एवं मत्स्यपुराणमें उठायी गयी है कि श्राद्धकर्ता अपने पितरोंको जो हव्य (देवताको दिया जानेवाला अन्न) और कव्य (पितरोंको दिया जानेवाला अन्न) देते हैं, वे पितृलोक कैसे पहुँचते हैं और उन्हें पहुँचानेवाला कौन है?

दूसरी शंका विष्णुपुराण यह उठाता है कि यदि अन्यके खानेपर अन्यकी तृप्ति हो जाती है तो विदेश जानेवालेको मार्गमें पाथेय क्यों दिया जाता है ? घरपर ही श्रद्धासे ब्राह्मणको भोजन करा दें तो प्रवासीकी अपने आप तृप्ति हो जायगी । भू-मण्डलपर ब्राह्मणको खिलानेसे परलोकगत पितर तृप्त हो जाते हैं, तो यह प्रवासी तो भू-मण्डलपर ही है । वह तृप्त क्यों न हो जाय ?

तीसरी शंका स्कन्दपुराण उठाता है कि श्राद्धीय अन्नसे मृत पुरुषकी तृप्ति हो जाती हो तो बुझे दीपकमें तेल डालनेपर उसे भी प्रज्वलित हो उठना चाहिए ।

चौथी शंका भी स्कन्दपुराण (नागरखण्ड) यह उठाता है कि अमावास्यादि तिथियोंमें द्विजों द्वारा श्राद्ध क्यों किया जाता है ? कारण, मृत पुरुषको अपने-अपने कर्मोंके अनुसार विभिन्न योनियोंमें चले जाते हैं । वे श्राद्धके समय पुत्रके घर कैसे पहुँच जाते हैं ?

इन शंकाओंका समाधान भी इन्हीं प्राचीन आचार्योंने कर दिया है । पहली शंकाका समाधान यह है कि श्राद्धमें दिया हव्य-कव्य इसीलिए पितरोंको पहुँचता है कि उस समय उनका पूरा नाम, गोत्र आदिका पता बता दिया जाता है तो, ठीक सही-सही पतेवाले पत्रकी तरह, वह भी प्रापकके पास पहुँच जाता है । उसे पहुँचानेवाला पोस्टमैन है मन्त्रशक्ति । श्राद्धमें बोले जानेवाले अपौरुषेय वेदमन्त्रोंमें अद्भुत शक्ति होती है । उस शक्तिके सहित मनःशक्ति और द्रव्यशक्तिके सहयोगसे मन्त्र ही ठीक-ठीक प्रापकको प्राप्तव्य पहुँचा देता है । विज्ञानके युगमें मनःशक्ति और द्रव्य-शक्तिकी सामर्थ्यके बारेमें अधिक कहनेकी आवश्यकता नहीं । श्राद्धमें ये तीनों शक्तियाँ काम करती हैं । जब व्याधकी वीणाकी लौकिक शब्दशक्ति (स्वर) से चपल मृग भी आकृष्ट हो उसके जालमें फँस जाता है, तो अलौकिक वैदिक शब्द मन्त्रोंकी शक्तिकी बात ही क्या ? उसमें भी जब उन्हें मनःशक्ति और द्रव्यशक्तिका सहयोग मिले तो पूछिये ही नहीं । मात्र यह सारी विधि श्रद्धाके साथ होनी चाहिए । श्रद्धाविरहित ये सारी शक्तियाँ व्यर्थ ही धरी रह जाती हैं ।

दूसरी शंका भी कोई अर्थ नहीं रखती । अन्यके खानेपर अन्यकी तृप्ति स्थूल भोजनसे कभी नहीं हो सकती, यह हम भी मानते हैं । किन्तु यहाँकी बात ही और है । श्राद्धीय अन्नादि खाकर वसु, रुद्र, आदित्यरूप दिव्यशक्तिसम्पन्न नित्य पितर तृप्त होते और दाताके पितरों-तक उसे सूक्ष्म साररूपमें पहुँचाकर उन्हें भी तृप्त करते हैं । उनमें अलौकिक सामर्थ्य होती है । श्राद्ध-सम्बन्धी इन सारे रहस्योंपर अग्निपुराण, मार्कण्डेयपुराण, बृहन्नारदीय, वाराह, मत्स्य, लिङ्ग आदि पुराणोंमें विस्तृत विवेचन है । श्राद्धसम्बद्ध सभी विषयोंके एकत्र विवेचनके लिए हेमाद्रिके 'चतुर्वर्गचिन्तामणि' का श्राद्धखण्ड द्रष्टव्य है, जो १७१७ पृष्ठोंमें है ।

तीसरी शंका बचपनभरी है । बुझा दीप अग्निसम्बन्धके बिना तेल डालने मात्रसे कैसे जलेगा ? किसी कार्यके लिए अनेक सहकारी कारणोंकी जरूरत होती है । केवल लकड़ीसे रसोई नहीं पकती । उसके लिए अग्नि, घी, आटा आदि भी आवश्यक हैं । फिर, बुझे दीपसे मृतक पितरका साम्य ही कैसा, जो स्वयं जड़ है ? भले ही मृतकका स्थूलशरीर न हो, पर भोगायतन सूक्ष्मशरीर उसे रहता ही है । उससे वह भोग भोग ही सकता है ।

चौथी शंका भी शास्त्रीय ज्ञानरहित है। पुत्र भले ही मृत पिताके निमित्त ब्राह्मणको पूड़ी-कचौड़ी खिलायें। देवल ऋषि कहते हैं कि उसके उस अन्नको ग्रहणकर वसु, रुद्रादि देवता मृतक जिस योनिमें हों, उनके पास उन्हीं योनियोंके खाद्यरूपमें उसे पहुँचा देते हैं। किसीने अपने पुत्रकी व्यवस्थाके लिए एक हजारका नोट दे दिया, तो पुत्रकी व्यवस्था करते समय वह मध्यस्थ उसके उपयोगकी वस्तु ही लाकर देगा। उस नोटके टुकड़े-टुकड़े कर उसे नहीं देगा। यहाँ भी यही बात है।

विज्ञानकी कसौटीपर

इस तरह श्राद्धके सम्बन्धमें और भी अनेक शंकाएँ उठती है और श्राद्धतत्त्वज्ञ उनका सहज समाधान कर देते हैं। जैसे :

१. पितर प्रदत्त अन्न ग्रहण कर लेते हैं तो वह कम क्यों नहीं हो जाता ? लेकिन हम देखते हैं कि हाथी कैंथ-फल खाकर भी लीदमें पूराका पूरा उगल देता है। भौंरेसे पुष्प-रस लेनेपर भी फूलमें कोई कमी नहीं आती।

२. पिता, पितामह, प्रपितामह तीनके नाम क्यों लिये जाते हैं, एक पिताका ही क्यों नहीं ? किंवा तीनसे आगेवालोंके क्यों नहीं ? इसरा एक उत्तर तो यह है कि एक नामके अन्य भी पितर हो सकते हैं। लेकिन वल्दियतसे अभीष्ट ही लिया जाता है। उसमें भी कदाचित् एक-सी वल्दीयत मिले, तो तीसरे पुरुषसे उसे अलग किया जा सकता है। तीनों नाम एक साथ मिलें, ऐसा प्रायः कभी नहीं होता।

वास्तवमें यह वैदिक-विज्ञानका विषय है। वहाँ बताया गया है कि मानवकी उत्पत्ति पिताकी शुक्र-धातुसे होती है। मनुष्यमें सन्तानोत्पादक शक्तियुक्त धातु शुक्र ही है। वैज्ञानिकोंने उस शुक्र-धातुमें ८४ अंश माने हैं, जिनमें २८ अंश उसके अपने अन्न-पानादि द्वारा उपार्जित होते हैं, शेष ५६ पूर्वजों द्वारा प्राप्त। ये ५६ अंश पूर्वजोंसे इस क्रमसे मिलते हैं : पितासे २१, पितामहसे १५, प्रपितामहसे १०, चतुर्थ पुरुषसे ६, पञ्चमसे ३, और छठेसे १। यही क्रम प्रत्येक मनुष्यमें होता है। इससे स्पष्ट है कि उसके सहित सात-सात पुरुषोंतक एक शुक्र-सम्बन्ध रहता है। इसीलिए सात पुरुषोंतक सापिण्ड्य-सम्बन्ध होता है। उसमें भी घनीभूत पिण्ड निर्माणकी शक्ति २१, १५ और १० अंशोंमें होती हैं। दससे कमका घनीभाव क्या बनेगा ? वे तो शरीरनिर्माणके नगण्य अंश हैं। ये तीन अंश देनेवाले पिता, पितामह और प्रपितामह ही होते हैं। यही कारण है कि श्राद्धमें इन्हींके नाम लिये जाते और इन्हें पिण्ड दिये जाते हैं।

३. पिण्डदानसे पितरोंकी तृप्ति कैसे ? इसके लिए भी वैदिक-विज्ञानकी शरण लेनी होगी। वहाँ कहा गया है कि सृष्टिके प्रारम्भमें प्राणोंकी उत्पत्ति हुई। वे दो भागोंमें बँट गये १. भृगु और २. अङ्गिरा 'भृगु' ही 'सौम्य' प्राण हैं तो अंगिरा आग्नेय प्राण। आग्नेय प्राणमें सोमकी आहुति पड़ने पर सृष्टि होती है। भूमि तीन अंगुल खोदनेपर उसको अग्नि सम्बन्ध

प्राप्त होता है। तब उसमें बीजरूप सोम बोनेपर अंकुर उग आते हैं। उनके पोषणार्थं वृष्ट्यादि सौम्य प्राण आवश्यक होते हैं। इस तरह अग्नि और सोमात्मक ही सारी सृष्टि है। पितर सोम-प्राण है। उनके लिए 'सौम्यासः' वेदोंमें कहा गया है। सोमका सजातीय सोमकी ओर ही आकृष्ट होता है। अतएव पितर चन्द्रलोकके पास रहते हैं। उन्हें सोमप्रधान व्रीहि, यव, तिलमिश्र पिण्ड देनेसे वे पुष्ट होकर अपने नियत स्थान सोमात्मक चन्द्रलोकके निकटस्थ पितृलोकमें पहुँच जाते हैं। यही पिण्डदानका वैज्ञानिक रहस्य है।

अन्तिम एक शङ्काका और समाधान सुन लें। प्रश्न होता है कि महालय, कन्यागतमें अमावास्याके दिन ही पितरोंके श्राद्धका इतना आग्रह क्यों? इसका कुछ तो समाधान पीछे किया जा चुका है। अर्थात् पितरोंको बाँटे गये तीन ऋतुओंमें प्रथम शरदृतुका प्रारम्भ महालय-आश्विनकृष्णमें होनेसे वह उनके स्वागतका काल है। अतएव उस समय उनके लिए श्राद्धपर जोर दिया जाता है।

अमावास्याको पितरोंके लिए प्रशस्ततम तिथि इसीलिए माना जाता है कि उस दिन चन्द्र सूर्यके ठीक ऊपर आ जाता है, जिससे वह अदृश्य हो जाता है। देवतागण सोमात्मक चन्द्रका पान करते हैं, ऐसा वर्णन है। उस दिन चन्द्र लुप्त हो जानेसे देव पानकी आशा छोड़ अन्यत्र चले जाते हैं। ऐसे समय देवप्रिय पिण्डादि सौम्य पदार्थ पितरोंको देनेपर उनसे ईर्ष्या करनेके लिए देव नहीं रहते और पितर निश्चित हो उसे ग्रहण करते हैं।

कन्या संक्रान्तिमें श्राद्धका आग्रह इसीलिए है कि उस राशिपर सूर्य अपनी नियत ऊँचाईसे पृथ्वीकी ओर नीचे उतर आता हैं। तुलाके १० अंशोंपर तो वह निम्नतम कक्षमें आ जाता है। शास्त्रीय मान्यता है कि पृथ्वीपर किये जानेवाले यज्ञादि कृत्य सूर्यमण्डलमें पहुँचते और वहाँसे उसकी यथायोग्य व्यवस्था होती है। कन्यागतमें निम्नतम कक्षामें, पृथ्वीसे अतिनिकट सूर्यके रहते यहाँ दिया श्राद्धादि पितरोंके पास शीघ्र पहुँच पाता है। अतएव आश्विनकृष्ण, अमावास्या, कन्यागत श्राद्धके प्रशस्ततम काल माने जाते हैं।

इस तरह श्राद्धीय वस्तुओं एवं कालनिर्धारणके ढूँढनेपर अनेक वैज्ञानिक रहस्य मिल सकते हैं। यहाँ उनका नमूना मात्र प्रस्तुत है। इस तरह पितरोंके प्रति कृतज्ञताज्ञापनका प्रकार श्राद्ध सर्वथा वैज्ञानिक भी सिद्ध होता है। तब क्यों न हम उसे सश्रद्ध अपनायें?

कर्मानुष्ठान अत्यन्त आवश्यक

निरन्तर नियमपूर्वक कर्म करते रहो। काम न करने या निकम्मा बैठनेसे काम करना अच्छा है। कर्मको सर्वथा छोड़ दिया जाय तो यह शरीर भी नहीं चल सकता। जीना दूभर हो जायगा।

मानव-जीवनकी दुर्लभता :

उपयोगिता व सफलता

श्री अगरचन्दजी नाहटा

★

नरत्वं दुर्लभं लोके।
न मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किञ्चित्। (महाभारत)

मनुष्य-जीवनको सभी धर्मोंने बहुत दुर्लभ बताया है, क्योंकि मनुष्य जगत्के अन्य सभी प्राणियोंसे कुछ विशेषता रखता है, जिससे वह स्व-परका कल्याण करते हुए जीवनका सर्वोच्च लक्ष्य मोक्षतक प्राप्त कर सकता है। जैन-धर्ममें तो स्पष्ट कहा है कि 'नरक, तिर्यञ्च, देव और मनुष्य इन चारों गतियोंमें मनुष्य-गतिमें ही मुक्ति मिल सकती है, क्योंकि नरकके जीव हर समय दुःखोंमें झुलसते रहते हैं। उनका ध्यान दूसरी ओर जा ही नहीं पाता। तिर्यञ्च आदिमें मानसिक शक्ति और विवेकका उतना विकास नहीं होता। उनका जीवन एक बँधे-बँधाये ढाँचेमें चलता रहता है। प्राकृतिक आवश्यकताओंको पूर्तिमें ही उनका जीवन व्यतीत हुआ करता है। उदात्तविचार और जीवन-शुद्धिके योग्य आचार-पालन उनके लिए संभव ही नहीं।

देव-गतिमें भौतिक दृष्टिसे तो मनुष्यकी अपेक्षा अधिक सुख-सुविधाएँ प्राप्त हैं, और देव-देवीगण उन भौतिक सुखोंमें ही लुभाये रहते है। हाँ, यदा-कदा तीर्थ आदि महा-पुरुषोंकी भक्ति आदिका संयोग उन्हें अवश्य मिल जाता है। तीर्थङ्कर जैसे महापुरुषोंकी वाणी-को भी कभी-कभी कई देव-देवीगण सुन लेते हैं। पर विषय-वासनाओं एवम् लोभ आदि कषायोंसे वे मुक्त नहीं हो पाते। जबतक पर-पौद्गलिक वस्तुओंमें मन लगा रहता है, आत्मिक साधनके मार्गपर अग्रसर होना कठिन हो जाता है; क्योंकि दोनोंकी विरोधी दिशाएँ हैं। बुरी बातोंको त्यागे विना अच्छी बातें अपनायी नहीं जा सकतीं। भौतिक सुखोंके प्रति जब-तक आकर्षण रहता है, आध्यात्मिक मार्गमें पूरी निष्ठासे लगा ही नहीं जा सकता। इसलिए देवगण भी मोक्षका मार्ग अपना नहीं सकते।

केवल मनुष्य ही ऐसा व्यक्ति है, जो चाहे तो सातवें नरकमें भी जा सकता है और पुरुषार्थ करे तो मोक्ष भी पा सकता है। मानव-जीवनके महत्त्वके सम्बन्धमें पुराणोंमें भी लिखा है कि मनुष्य जो कर सकता है, वह स्वर्गके देवता भी नहीं कर सकते। कर्मका बल पृथ्वीके मानवकी सबसे बड़ी शक्ति है। यही उसकी विजय है। इसीलिए स्वर्गके देवता भी पृथ्वीपर मनुष्य-देहमें जन्म लेना चाहते हैं :

जनोऽयमन्यस्य मृतः पुरातनः पुरातनैरेव समो भविष्यति।
पुरातनेष्वित्यनवस्थितेषु कः पुरातनोक्तान्यपरीक्ष्य रोचयेत्॥

देवत्वममरेशत्वं तत्पूज्यत्वं च मानवाः।
प्रयन्ति वाञ्छितं वान्यद् दृढं ये व्यवसायिनः॥
नाविज्ञातं न चागम्यं नाप्राप्यमिहेति चेत्।
उद्यतानां मनुष्याणां यतचित्तेन्द्रियात्मनाम्॥

बुद्धिपूर्वक कार्य करनेवालोंके लिए यहाँ असाध्य क्या है? : **किं वाऽसाध्यं विपश्चिताम्** (२०.३५)। देवत्व, इन्द्रत्व और उनके द्वारा पूजनीय जो ब्रह्मत्व है, उन सबको या और भी जो मनोवाञ्छित हो, उसे वे मनुष्य प्राप्त कर लेते हैं जिनके पास कर्मका अटल निश्चय है। जिन मनुष्योंका चित्त, इन्द्रियाँ और आत्मा अपने वशमें है एवम् जो कर्म करनेमें उद्यत हैं, उनके लिए स्वर्ग या पृथ्वीपर ऐसा कुछ भी नहीं जो ज्ञान और कर्मकी उपलब्धिसे बाहर हो; जिसे वे चाहें तो न जान सकें या जहाँ न पहुँच सकें।

कर्म भोगसे श्रेष्ठ है; क्योंकि कर्ममें मानवकी स्वतन्त्रताका बीज है। भोगका जीवन तो कर्म-फलकी बेड़ियोंसे जकड़ा हुआ है। भोगमें उदय नहीं, केवल क्षयका भाव है। इसीलिए स्वर्गके देवोंको कर्म-निगड़ग्रस्त और कर्मक्षयमें उन्मुख होनेके कारण मनुष्योंसे हीन माना गया।

देहं लब्ध्वा विवेकाढ्यं द्विजत्वं च विशेषतः।
तत्रापि भारते वर्षे कर्मभूमौ सुदुर्लभम्॥
मनुष्यः कुरुते तत्तु यन्न शक्यं सुरासुरैः।
तत्कर्म निगडग्रस्तैस्तत्कर्मोन्मोक्षणोन्मुखैः॥

धर्मके सम्यक् ज्ञान, दर्शन, चारित्र्यको मोक्षका मार्ग बतलाया गया है। वस्तु-स्वरूपकी सही जानकारी सम्यक् ज्ञान है। आत्मा शरीर, कषाय आदिसे भिन्न ज्ञानादि गुणोंसे सम्पन्न है, पर-पौद्गलिक पदार्थ जड़ हैं, आत्मा चेतनस्वरूप है, इस बातकी दृढ़ प्रतीति अर्थात् आत्म-दर्शन ही सम्यग् दर्शन है। उसे पानेके लिए सच्चे देवगुरु, धर्मकी श्रद्धा करना और उनके कहे हुए तत्त्वोंपर विश्वास करना व्यावहारिक सम्यग् दर्शन है। जो कुछ त्यागने योग्य और ग्रहण करने योग्य बातोंसे जाना या समझा, उनमेंसे हेयको छोड़ देना और उपादेयको स्वीकार करना, आत्मरमणताकी ओर अग्रसर होना ही सम्यक् चारित्र्य है। जैसे केवल ज्ञान मात्रसे काम नहीं चलता, वैसे केवल दर्शन या केवल चारित्र्यसे भी सिद्धि नहीं मिलती। तीनोंके समन्वयको ही मोक्षका मार्ग बतलाया गया है। अर्थ जो कुछ जानो, उसकी दृढ़ प्रतीति हो और तदनुसार आचरण हो। अन्य दर्शन किसी एक बातको पकड़ लेते हैं। इसीसे वेदान्त 'ज्ञान'को मुक्तिका कारण मानते हैं। कुछ अन्य दर्शनोंने कर्मकाण्डको ही धर्म मान लिया है, पर जैन-दर्शनने सबका समन्वय करते हुए तीनोंके सम्मिलनसे ही मुक्ति मानी है।

आत्मा अनन्त ज्ञानका भण्डार होते हुए भी राग-द्वेष या कर्मोंके कारण उसका वह ज्ञान दबा या ढँका पड़ा है। उसके कर्मावरण दूर करनेके अनेक साधन हैं। उनमें एक साधन है, महापुरुषोंकी वाणीका स्वाध्याय एवं चिन्तन; क्योंकि जिन व्यक्तियोंका ज्ञान बहुत निर्मल और उच्चस्तरका होता है, उनके सम्पर्कमें आने, व्याख्यान आदि सुननेसे साधारण व्यक्तियोंको भी सम्यक् बोध और सतर्कताकी प्रेरणा मिलती है। प्राणियोंका अन्तर्-विवेक जागृत होता है। आत्माका पतन करनेवाले कारणोंसे वह दूर हटता है, उन्हें छोड़ता है और आत्मिक गुणोंके विकास कारणोंको अपनाता है। अपना समय एवम् श्रम उसीमें लगाता है।

वैसे तो महापुरुष अनेक बन गये हैं, पर उन सभीकी वाणी सभी व्यक्तियोंको सदा उपलब्ध नहीं होती। उन्होंने जो कहा, उसका कुछ लाभ उनके सम्पर्कमें आनेवाले व्यक्तियोंने ही उठाया। उनकी जो वाणी उनके शिष्यादिने याद कर ली या लिख ली तो उसे कुछ स्थायित्व मिला। परम्परागत बहुत-सी बातें लुप्त होती चली गयीं। फिर भी जो बच पायी हैं, वे हमारे जीवनके उत्थानके लिए काफी हैं। इसीलिए हमारा ध्यान जितना भी महापुरुषोंके वाक्योंकी ओर रहेगा, उतना ही हमारे विचारों और आचारोंमें निर्मलता आती रहेगी। बुरे कामोंको छोड़ने एवम् अच्छे कामोंको अपनानेकी प्रेरणा मिलती रहेगी। क्रमशः महापुरुषोंके बतलाये मार्गपर चलते रहनेसे कर्मोंका भार कम होता चला जायगा। इसी तरह हम क्रमशः आत्मिक गुणोंका विचार करते हुए मोक्ष प्राप्त कर सकेंगे। इसीलिए हमें महापुरुषोंके आदर्श-वाक्य अधिकतर सामने रखने चाहिए।

वैसे तो जिन्होंने भी साधना द्वारा आत्मिक गुणोंका अधिकाधिक विकास किया है, साधारण-जनकी अपेक्षा जो अपने गुणोंसे असाधारण बन गये हैं, उन सभीको 'महापुरुष' कहा जा सकता है। पुरुषका सच्चा धर्म है, पुरुषार्थ करना। वह सही दिशामें और सत्-कार्योंके लिए हो, तभी मनुष्य 'पुरुष' कहलानेका अधिकारी होता है। ऐसे सत्-पुरुषार्थसे जो पुरुष सम्यक् ज्ञान, दर्शन, चारित्र्यका अच्छे रूपमें विकास कर लेते हैं, उनके साथ 'महान्' विशेषण जुड़ जाता है। अर्थात् लोग उन्हें महापुरुष' कहने लगते हैं। ऐसे पुरुषोंमें तर-तमभाव तो रहता ही है, अर्थात् सभी उच्च भूमिकापर समानरूपसे नहीं पहुँच पाते। अतः जो आत्माएँ परमात्म-पदको प्राप्त कर लेती हैं, उन्हें परमात्म, प्रभु, ईश्वर, भगवान् आदि संज्ञाएँ मिल जाती हैं। ऐसे परमात्माओंमें सबसे ऊँचे तीर्थंकर होते हैं; क्योंकि वे केवल ज्ञान, केवल दर्शन और ज्ञानिक चरित्रसे सम्पन्न होते हैं। पूर्ण वीतरागकी वाणी ही सर्वथा निर्दोष और मान्य हो सकती है। उस वाणीके आश्रयसे लाखों-करोड़ों व्यक्तियोंने निर्वाण पद प्राप्त किया—सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हो गये। जो उस अवस्थाको प्राप्त नहीं कर सके, वे भी क्रमशः आत्मोत्थानके प्रशस्त पथपर यथाशक्ति आगे बढ़ते गये हैं।

जैन-दर्शनके अनुसार वस्तुका मूल स्वभाव ही धर्म है। आसपास और बाहरी निमित्तों से अर्थात् परसंगतिसे जो विकार या विभाव होते हैं, उनसे आत्मिक गुण आवृत होते हैं। उन सभी कार्योंको 'अधर्म' कहा जाता है। आत्माके शुद्ध स्वभाव, मूल स्वरूप या आत्मिक गुणोंका

विकास जितने अंशोंमें जिन कार्यों या निमित्तसे होता है, उन्हें धर्मकी संज्ञा दी जाती है। श्रीमद् देवचन्द्रजीने आध्यात्मिक-गीतामें कहा है :

आत्मगुणरक्षणाः ते धर्माः।
स्वगुणविध्वंसनाः ते अधर्माः॥

परमात्मा या ईश्वर वही है, जिसमें आत्मिक गुणोंका परिपूर्ण विकास हो गया हो। ऐसे महापुरुषोंके दर्शन, पूजा भक्ति आदर द्वारा उनकी वाणीके श्रवण, मनन तथा आचरणसे

जी व न का स च्चा उ द्दे श्य

१. अज्ञानके क्षेत्रोंपर ज्ञान, प्रेम एवं भागवत संकल्प द्वारा विजय।
२. ऐसी आत्माका विकास जो अपने आपको मन, प्रण और शरीरमें अभिवर्धित करे।
३. सब पदार्थोंमें भगवान्का भगवान्पर स्वामित्व है।
४. संसारमें दिव्य आनन्द, दिव्य जीवनका उपभोग।
५. आन्तर और बाह्य प्रकृतिपर पूर्ण आध्यात्मिक स्वशासन।

—योगी अरविन्द

ही मनुष्य-जन्म सफल हो सकता है। मानव ही उनकी वाणी और आश्रयसे उनके जैसा बन सकता है, अन्य कोई नहीं। यही मानव-जीवनकी उपयोगिता है। महाभारतमें कहा है कि मनुष्यसे ऊँचा-श्रेष्ठ कोई नहीं है। ऐसे जन्मको पाकर सार्थक बनाना ही हम सबका कर्तव्य है। मानवताके बिना मानवका मूल्य ही क्या? मनुष्य प्रत्येक कार्य विचारपूर्वक करे। त्याज्य बातोंको त्यागे और अपनाने योग्य बातोंको अपनाये। बुरी आदतोंको छोड़े। सत्संग, साधना-द्वारा ज्ञान एवं मानवीय गुणोंका विकास करे।

सर्वव्यापक एवं दुःखमुक्त कौन ?

जो तत्त्वका पूर्ण निश्चय करके ज्ञानस्वरूप, निराधार और संपूर्ण प्राणियोंके भीतर रहनेवाले आत्माको जान लेता है, वह सर्व-व्यापक हो जाता है। जो विद्वान् संयोगको ही वियोगके रूपमें देखता है तथा नानात्वमें एकत्वका दर्शन करता है, वह दुःखसे सर्वथा मुक्त हो जाता है।

(अनुगीता)

गीता-तत्त्व-चर्चा

सत् और असत् दोनोंका ज्ञान आवश्यक

डॉ० जयकिशनप्रसाद खण्डेवाल

★

भारत-भूमिकी यह विशेषता है कि कुरुक्षेत्रमें दोनों ओर सेनाएँ खड़ी हैं, फिर भी आत्मा-परमात्माकी चर्चा चल रही है। कृष्ण अर्जुनको कर्तव्यपथपर आरूढ़ करनेके लिए उसे तत्त्वज्ञानका उपदेश दे रहे हैं। इसी तत्त्वज्ञानने तो इस देशकी संस्कृतिको सनातन बनाया और वह आज भी चल रही है। जीव किसे कहते हैं? जो आज जीवित है, पहले भी था और भविष्यमें भी रहेगा। इसी जीव-तत्त्वज्ञानकी चर्चा कृष्णने अर्जुनसे की है। किसलिए? उसे कर्तव्य कर्मके प्रति उदासीन होनेसे रोकनेके लिए।

गीताके पंचम अध्याय (श्लोक १४) में श्रीकृष्ण कहते है: "प्रकृति ही मनुष्यके कर्म एवं कर्मफलका निर्धारण करती है। उसे हम छोड़ नहीं सकते।" इसीलिए उन्होंने अर्जुनको स्व-प्रकृतिके अनुसार कर्म करनेकी प्रेरणा दी। अर्जुनका हृदय अपने बन्धु-बान्धवोंके प्रति दयाकी भावनासे नहीं, वरन् मोहकी भावनासे भरा था। इसीलिए नारायण श्रीकृष्णको मोहनिरसन-हेतु उसे उपदेश देना पड़ा कि "तुम अपनेको कर्ता मत समझो। दुनियावाले यह नहीं कहेंगे कि अर्जुनके हृदयमें दयाका सागर उमड़ आया, वरन् उसकी नपुंसकताकी चर्चा करेंगे। अतः अपनेको अयशसे बचानेके लिए उसे कर्तव्य कर्म करना चाहिए।"

तीनों लोकोंमें यदि कोई वस्तु पवित्र है तो वह है यथार्थ ज्ञान। वह हमें जहाँसे मिले, ग्रहण करना चाहिए। यह सबको पवित्र बनाता है। आत्माको निर्मल बनाता है। ज्ञान तो आत्माका भोजन है: **ज्ञानामृतं भोजनम्**। एक मराठी कविने कहा है कि यह शरीर मन्दिर है, मन सुन्दर कमलासन है और उस अष्टदल कमलके सिंहासनपर आत्मा विराजमान है। उसका प्रक्षालन हमें ज्ञानरूपी गंगाके जलसे करना चाहिए। यही जीवनकी सार्थकता है।

वह ज्ञान क्या है? नारायण श्रीकृष्ण कहते हैं:

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः॥ (२.१६)

जो सत् है वह कभी असत् नहीं हो सकता। आत्मा सत् है, शरीर असत् है। तत्त्व-दर्शी सत् और असत् दोनोंको जानता है।

यह श्लोक गीताकी तत्त्वसमीक्षाकी आधारशिला है। जो लोग आत्माके अस्तित्वके सम्बन्धमें शंकालु रहते हैं, उन्हें लक्ष्य करके ही यह श्लोक कहा गया है। शाश्वत आत्माके लिए चिन्तित होनेकी आवश्यकता नहीं। वह सदैव सत् है, त्रिकालमें वह असत् नहीं है।

गीताका आध्यात्मिक स्वरूप

श्री शान्तिस्वरूप गुप्त

☆

महाभारतके सम्बन्धमें अनेक विद्वानोंकी धारणा है कि इस कथाका आधार आध्यात्मिक रूपक है। इसके सब पात्र विशेष मानवीय गुणोंके प्रतीक हैं। यह युद्ध मानव-शरीरके अन्तर्गत निरन्तर चलनेवाले देवासुर संग्रामका प्रतीक है। पात्रोंके नामों और घटनाक्रमको देखनेपर इस विश्वासको कुछ आधार भी मिलता है।

सृष्टिके प्रारम्भमें जब त्रिगुणात्मिका प्रकृति पूर्णतः निश्चेष्ट थी, तो परमात्माके दिव्य मनमें सात्त्विक संकल्प हुआ : **एकोऽहं बहु स्यां प्रजायेय।** संकल्प क्रियात्मक रूप धारण करता है। प्रकृतिके साथ पुरुषका संयोग होता है, सृष्टिकी उत्पत्ति होती है :

अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन्मम योनिरप्स्वन्तः समुद्रे।
ततो वितिष्ठे भुवनानि विश्वोतामूं द्यां वर्ष्मणोपस्पृशामि॥

(ऋग्वेद : देवीसूक्त ७)

ठीक यही भाव गीतामें (१४.३-४) भी कहा गया है :

मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधाम्यहम्।
सम्भवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत॥
सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः संभवन्ति याः।
तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता॥

महाभारतमें व्यास (ब्रह्म) अम्बा, अम्बालिका एवं दासीके साथ संयोग करते हैं एवं त्रिगुणात्मिका प्रकृतिके अनुसार सत्से विदुर, रजसे पाण्डु एवं तमसे धृतराष्ट्रकी उत्पत्ति होती है।

सत्त्वगुणीको तो राज्यकी अपेक्षा होती नहीं। अतः राज्यके दो ही अधिकारी रह जाते हैं : धृतराष्ट्र और पाण्डु। धृतराष्ट्र ज्येष्ठ एवं बलवान् होते हुए भी अन्धे हैं, अतः राज्यच्युत हो जाते हैं। पाण्डु रजोगुणी हैं, भोगी हैं। अतः 'भोगे रोगभयम्' के अनुसार रुग्ण एवं अल्पजीवी हैं।

रजोगुणके अन्तर्गत सभी विशिष्ट गुणोंका समावेश होता है। अतः पाण्डुकी धर्मवृत्तिके प्रतीक युधिष्ठिर, बलवृत्तिके प्रतीक भीम, वीरताके प्रतीक अर्जुन, ज्ञानवृत्तिके प्रतीक सहदेव

एवं देववृत्तिके प्रतीक नकुल उत्पन्न हुए। पाण्डु रजोगुणी, भोगी होनेके कारण अल्प आयुमें ही मृत्युको प्राप्त हो जाते हैं और राज्य पुनः तमोगुणप्रधान अन्धे धृतराष्ट्रके हाथोंमें चला जाता है। 'धृतराष्ट्र'का अर्थ ही है वह पुरुष, जिसने दूसरोंका न्यायोचित राज्य छीन लिया हो। ऐसे मनुष्यका चिन्तातुर होना स्वाभाविक है। इसीलिए चिन्तासे व्याकुल होकर वह बार-बार सञ्जयसे प्रश्न करता है कि 'युद्धकी इच्छासे समवेत मेरे और पाण्डुके पुत्रोंने क्या किया ?' दूसरोंकी न्यायोचित सम्पत्तिपर पाशविक बलसे अधिकार करनेवाला पुरुष तो अन्धा होता ही है। अतः उसका चिन्तासागरमें निमग्न होना आश्चर्यजनक नहीं है।

अन्धेके अनुयायी भी अन्धे ही होते हैं। यहाँ धृतराष्ट्रकी पत्नी गान्धारी आँखें होते हुए भी अन्धी थी, वह आँखोंपर पट्टी बाँधे रहती थी। आँखें होते हुए भी नहीं देखती थी कि उसके पुत्र क्या अन्धेर मचाये हुए हैं। यदि उसने समय रहते अपने पुत्रोंको पाण्डवोंपर किये गये अमानुषिक अत्याचारोंके लिए डाँटा होता, तो सम्भव था कि महाभारत जैसा सर्व-नाशकारी युद्ध ही न हुआ होता। अन्यायीके पुत्र भी तो उसीके अनुगामी होते हैं! धृतराष्ट्रके दुर्योधन, दुःशासन, दुःसह, दुर्धर्ष, दुर्विमोचन, दुष्प्रवर्षण, दुर्मर्षण, दुष्कर्ण, दुर्मव, दुष्पराजय आदि पुत्र एवं दुःशला कन्या सभी एकसे एक बढ़कर दुष्टबुद्धि हुए। उनका सारा बल, पराक्रम, अन्यायके प्रतिपादनमें ही व्यतीत हुआ।

यही अवस्था उनके अनुयायी भीष्म, द्रोण, कर्ण, अश्वत्थामा आदिकी भी थी। यद्यपि ये लोग स्वयं बड़े धार्मिक थे, तथापि संसर्ग-दोषके कारण सर्वदा अन्यायके पोषणमें ही लगे रहे। इसीलिए भगवान् कृष्णके प्रियपात्र होते हुए भी उन्होंने उनका वध कराना ही श्रेयस्कर समझा, क्योंकि उनकी प्रतिज्ञा ही थी :

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥

जुएमें हार जानेपर जब दुर्योधनकी आज्ञासे दुःशासन उस एकवस्त्रा, रजस्वला अपनी भाभी द्रौपदीको भरी सभामें नग्न करने लगा, तो द्रौपदीकी कातर प्रार्थनापर भी भीष्म, द्रोण, कर्ण किसीने सामर्थ्य रहते हुए भी इस अमानवीय अत्याचारका प्रतीकार नहीं किया। अन्यथा बहुत सम्भव था कि कौरव-कुलका सर्वनाश होनेसे बच गया होता।

दुर्योधन स्वयं वीर था। उसका सैन्यबल पाण्डवोंसे कहीं अधिक विशाल था, किन्तु पापके कारण उसका पक्ष निर्बल था। अपने स्वयंकृत पापोंके कारण वह सर्वदा सशंकित रहता था।

दुर्योधनको युद्धकी विभीषिका बताकर केवल पाँच गाँव पाण्डवोंको देनेके लिए जब शान्तिदूत बनकर आये भगवान् श्रीकृष्ण उसे सहमत न कर सके तब और कोई उपाय न देख पाण्डवोंको युद्धके लिए तैयार करनेमें ही उन्होंने हित समझा।

वहाँ धृत-राष्ट्र थे, तो यहाँ पाण्डव हृत-राष्ट्र! अन्यायसे इनका राज्य छीन लिया गया था। धर्मके नामपर इन्होंने अनेक कष्ट सहे। राजकुमार होते हुए भी वन-वन मारे-मारे

फिरे। अज्ञातवासके समय राजा विराटके यहाँ निम्नस्तरकी सेवा भी इन्हें स्वीकार करनी पड़ी। द्रौपदीको भरी सभामें कीचककी लात सहनी पड़ी और वह भी देवताओंको भी जीतनेवाले अपने पतियोंके सामने। लेकिन यह सब कुछ एकमात्र धर्मकी मर्यादाकी रक्षाके लिए सहन किया गया। यही कारण था कि हीन साधनोंके होते हुए भी दैवीशक्तिके सामने पाशविक शक्तिको नतमस्तक होना पड़ा। अन्यायके ऊपर न्यायकी विजय हुई। और तो और, युद्धके प्रारम्भमें युधिष्ठिरके माँगनेपर कौरवपक्षके भी प्रभुत्व संपन्न वीरोंने हृदयसे उनकी विजयकी कामना की थी। सम्भव है, समय रहते यदि दुर्योधन इस तथ्यसे अवगत होता तो ऐसा विनाशकारी युद्ध प्रारम्भ ही न हो पाता।

सर्वप्रथम अर्जुनके विषादयोगसे गीताका प्रारम्भ होता है। विषाद कोई योग नहीं, वरन कुयोग है और इसी कुयोगका निराकरण कर इसे योगमें परिणत करनेके हेतु ही अगले अध्यायोंमें भगवान्‌ने सब सुयोगोंद्वारा कुयोगरूपी शत्रुसे रक्षा करके अर्जुनको युद्धके लिए प्रेरित करनेका प्रयत्न किया। उसमें वे सर्वथा सफल भी हुए। गीताका प्रारम्भ 'कुरु' (करो) से होकर 'करिष्ये' (करूँगा) समाप्त हुआ है।

विषाद-योगका एक और भी महत्त्व है। मनुष्य जब विपत्तिग्रस्त होता है तभी उससे मुक्त होनेका उपाय भी ढूँढता है। यदि युद्धसे पूर्व अर्जुन मोहग्रस्त न हुआ होता तो भगवान्‌के हृदयरूपी सागरसे गीता जैसे रत्नकी उपलब्धि हो ही कैसे सकती थी ?

शुभकर्मका प्रारम्भ करनेसे पूर्व एक प्रकारका विषाद तो सभी मनुष्योंके जीवनमें होता है और तभी वह उससे छुटकारा पानेके लिए प्रयत्नशील होता है। गीताके उपदेशसे भगवान्‌ने केवल अर्जुनका ही नहीं, अपितु 'किं कर्म किमकर्मेति' की स्थितिमें आपन्न मानवमात्रमें जीवनमें आनेवाले विषादको पृथक् कर उसे आत्मानन्दकी प्राप्तिका उपाय बताकर मुक्त होनेके लिए प्रेरित किया है।

सर्वप्रथम अर्जुनके मोहग्रस्त होनेका कारण धृतराष्ट्रद्वारा प्रेषित संजयका युद्धसे पूर्व पाण्डवोंको कपटी उपदेश देकर उनकी धार्मिक भावनाओंको युद्धके विरुद्ध उद्‌बुद्ध करना था। अतः जो जो तर्क सञ्जयने पाण्डवोंको युद्धसे विरत करनेके लिए उपस्थित किये थे, प्रायः वे ही सब ज्योंके त्यों अथवा साधारण परिवर्तित रूपमें अर्जुनने भगवान्‌के समक्ष युद्धसे विरत होते समय उपस्थित किये हैं। महाभारतके संजययान पर्वको पढ़नेसे यह सब स्पष्ट हो जायगा।

युद्धसे विरत होनेके तीन प्रधान कारण अर्जुनने भगवान्‌के समक्ष उपस्थित किये हैं : १. अपने स्वजन, गुरुजन एवं निकटस्थ संबंधियोंका नाश : २. स्वजननाशजनित अधर्म। ३. इस अधर्मसे बचनेके लिए संन्यास-ग्रहणकी आवश्यकता। उपर्युक्त तीन समस्याओंके निराकरण-हेतु ही गीताका समस्त ज्ञान आवश्यक हुआ। अतः प्रत्येक दृष्टिसे भगवान्‌ने अर्जुनके मोहका निराकरण करनेका प्रयत्न किया है।

प्रथम भगवान् सांख्ययोग द्वारा जड़-चेतनके ज्ञानसे उपदेश प्रारम्भ करते हैं। 'संख्या' शब्दसे सांख्य बना है।

पदार्थाः संख्यायन्ते व्युत्पाद्यन्ते अस्मिन् इति सांख्यम्।

(मधुसूदनी गीता १८.३३)

संख्या = सम्यक् ख्यान, तत्त्वनिश्चयके लिए विचार, आत्मविषयक निश्चित ज्ञान। बृहदारण्यक उपनिषद्में इसका निरूपण इस प्रकार किया है।

'द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे मूर्तं चैवामूर्तं च मर्त्यं चामृतं च।' 'इदमेव मूर्तं यदन्यत् प्राणात्।' 'अथामूर्तं प्राणश्च। यश्चायमन्तरात्मन्नाकाश एतदमृतम्।'

(बृहद्० २।३।१,४,५)

अर्थात् इस अविनाशी आत्माके दो स्वरूप हैं : एक मर्त्य, दूसरा अमर। प्राणसे भिन्न इन्द्रियादि शरीर मर्त्य एवं प्राण, बुद्धि, आत्मा अमर। लेकिन आत्मा स्वभावसे नित्य होनेपर भी कर्मानुसार मनमें प्रविष्ट होकर बार-बार जन्म लेता और मरता है।

एको ह देवो मनसि प्रविष्टः प्रथमो जातः स उ गर्भे अन्तः।

(अथर्व १०.८.२८)

मनुष्य केवल इसके मर्त्यभागको ही जानता है, अन्दरकी अमर सत्ताको नहीं। अन्यथा अमर सत्ताको जाननेवाला कभी मृत्युके दुःखको प्राप्त नही होता।

न प्राणेन नापानेन मर्त्यो जीवति कश्चन।
इतरेण तु जीवन्ति यस्मिन्नेतावुपाश्रितौ॥ (क० उ० २।२।५)

प्राण या अपानसे नहीं, वरन् जिस आत्मशक्तिके ये दोनों आश्रित हैं उस आत्माके सहारे यह शरीर जीवित रहता है। अतः भगवान् कहते है कि अर्जुन! तू, मैं और ये कौरवादि योद्धागण पहले भी थे, अब भी हैं और मृत्युके पश्चात् भी रहेंगे। इनमें जो नित्य वस्तु आत्मा है वह न तो इस शरीरके साथ जन्म लेती है और न मरेगी। अतः अर्जुन तेरे बाणों द्वारा भीष्मादि कौरव मरेंगे, यह धारणा निर्मूल है।'

अब दूसरा प्रश्न उठता है कि देहके नष्ट होनेपर आत्माका क्या होगा? इस शरीरमें बालपन, तारुण्य, वृद्धत्व एवं मृत्यु आती है, किन्तु आत्मा इन सबसे अपरिवर्तित रहता है। इसी प्रकार मृत्युके पश्चात् भी पुनर्जन्म, वार्धक्य, क्षीणता एवं मृत्यु क्रमशः आते रहते हैं।

जीवात्मा सनातन एवं नित्य है। मनमें बुद्धि एवं आत्मा विराजमान रहकर पुनः पुनः जन्म लेकर पुनः पुनः मृत्युको प्राप्त होता है।

वेदमें जीवात्माके जन्म, वार्धक्य, क्षय और पुनर्जन्मकी चन्द्रमासे तुलना की गयी है। चन्द्रमाकी षोडश कलाओंकी भाति जीव भी षोडश कलायुक्त है। चन्द्रमा जिस प्रकार शुक्ल प्रतिपद्को उदित होकर अष्टमी तक बालक एवं पूर्णिमाको पुनः पूर्ण तरुण होकर कृष्णपक्षकी अष्टमीसे क्षीण होता हुआ अमावस्याको देहपातको प्राप्त हो जाता है। पुनः प्रति प्रतिपद्को नवीन

जन्म ग्रहणकर अमावस्याको मृत्युको प्राप्त हो जाता है। इसीलिए इसे 'पुनर्णव', पुनः पुनः जन्म लेकर नवीनकी भाँति हो जानेवाला कहा है।

इसीलिए जीवको 'मातरिश्वा' अर्थात् माताके गर्भमें रहनेवाला भी मानते हैं। उपर्युक्त प्रमाणोंसे यह निश्चय हो गया कि जन्म और मृत्यु इस देहके धर्म हैं और माता पिता, गुरु आदिका सम्बन्ध केवल इस नश्वर शरीरको लेकर ही है। वस्तुतः आत्मा न किसी की माता है, न पिता और न किसीका गुरु है। जिस सम्बन्धसे शोक या आनन्द होता है, वह सम्बन्ध भी नित्य नहीं है।

इन्द्रियोंके साथ विषयोंका सम्बन्ध होनेसे सुख-दुःखादि द्वन्द्व अनुभव होते हैं: अतः इनसे मोहित न होकर इनको सहन करना ही श्रेयस्कर है। जो इन्द्रियोंसे प्राप्त सुख-दुःख आदि द्वन्द्वोंमें आसक्त नहीं होता, वही आत्मिक सुखप्राप्तिका अधिकारी हो सकता है। पञ्च महाभूतोंके गुण, रूप, रस, गन्ध, शब्द एवं स्पर्शका जब अपनी-अपनी स्वभाववाली इन्द्रियों-के साथ सम्पर्क अथवा स्पर्श होता है, तभी दुःख-सुखकी अनुभूति होती है। अतः मात्रा-स्पर्श द्वारा उत्पन्न सुख-दुःख भी क्षणिक होते हैं, स्थायी नहीं। अतः 'तान् तितिक्षस्व भारत'-अतः उनको सहन करना ही श्रेयस्कर है। इसीसे हानि-लाभ, जय-पराजय आदि द्वन्द्वोंका प्रभाव 'तितिक्षा' अर्थात् सहन करनेसे ही न्यून हो सकता है। तितिक्षाके द्वारा जिस पुरुषको द्वन्द्व व्यथा नहीं पहुँचाते, उसीको समदुःख-सुख और धीर कहा जाता है। संसारका कोई भी द्वन्द्व जिस मनुष्यकी मनःस्थितिमें व्यथा नहीं पहुँचा पाता वही धीर पुरुष है।

दूसरा पक्ष जो गीताका सबसे अधिक प्रतिपाद्य विषय है, वह है निष्काम कर्म। गीताकारको स्वयं इसकी प्रेरणा यजुर्वेदमें वर्णित निम्नांकित मन्त्रसे प्राप्त हुई है:

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥ (ईशा० २)

सम्पूर्ण गीताका कर्मयोग इसी मन्त्रपर आधृत है। कर्म करते हुए संसारमें जीवन व्यतीत करो। यह गति विपरीत मार्गपर अग्रसर नहीं होने देगी और इस प्रकारका 'कर्म' बन्धनका कारण नहीं होगा।

कर्म भला हो अथवा बुरा, बन्धनका कारण तो होता ही है। लेकिन यहाँ स्वयं वेद भगवान् कहते हैं कि कर्म बन्धनका कारण नहीं होगा और इसीका प्रतिपादन भगवान्ने गीतामें किया है: 'तस्माद् योगी भवार्जुन।' ऐसा कहनेमें भगवान्का कुछ विशेष आशय अवश्य है।

कर्म करते समय मनुष्यकी जैसी भावना होती है, उसीकी प्रतिक्रिया अन्तःकरणमें होती है और उसीका नाम पाप-पुण्य है। किन्तु जिन कर्मोंको मनुष्य उदासीन दृष्टिसे करता है, और उनको स्वधर्मपालन समझ कर करता है, बिना भली अथवा बुरी भावनाके कर्तव्य समझकर सम्पादित करता है और जिसका उद्देश्य 'सर्वभूतहिते रताः' है उसका फल कहाँसे होगा? ऐसे ही कर्मको गीताने निष्काम-कर्मयोगकी उपाधि दी है:

अर्जुनको सन्देह हुआ कि भगवान् भी युद्धमें सम्मिलित हैं और मैं भी युद्ध कर रहा हूँ, तो इनका कर्म किस प्रकार निष्काम और मेरा सकाम हो गया ? तो भगवान् कहते हैं :

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते ।
योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते ॥

अर्जुन ! 'तू युद्ध कर रहा है अपने खोये हुए राज्यकी प्राप्तिके लिए । अत: तेरा युद्ध करना सकाम है । इसके विपरीत मैं युद्धमें सम्मिलित हुआ हूँ । अपनी 'धर्मसंस्थापना'की प्रतिज्ञा-पूर्तिके लिए । मेरी कामना है कि संसारमें अन्यायी अत्याचारियोंका गुट तोड़कर धर्मकी संस्थापना करना । छोटे-छोटे राज्योंमें विभक्त भारतवर्षको एकसूत्रमें बाँधकर इसको महाभारत बनाना । अतः मेरा कार्य लोककल्याणके लिए है, इसीलिए निष्काम है । मनुष्यको पारिवारिक सुखकी अपेक्षा राष्ट्रहितको अधिक महत्त्व देना चाहिए । समष्टिके हितके लिए व्यष्टिकी बलि देनी होगी : **त्यजेदेकं कुलस्यार्थे** : इस प्रकार व्यक्तिगत स्वार्थसे ऊपर उठकर जब मनुष्य **सर्वभूतहितेरत** होकर कर्म करता है, तब वह मुक्तिका अधिकारी हो जाता है । उसके कर्म कभी बन्धनके कारण नहीं बन पाते ।

इतना सुनकर अर्जुनका मोह नष्ट हो गया । उसने सर्वात्मसमर्पणके भावसे भगवान्से कहा :

नष्टो मोहः स्मृति र्लब्ध्वा···करिष्ये वचनं तव ।

●

आत्म-हत्यासे बचो

मानव-शरीर अन्य सभी शरीरोंसे श्रेष्ठ और परम दुर्लभ है । यह भगवान्की विशेष कृपासे जन्म-मृत्युरूप संसार-समुद्रसे तरनेके लिए ही मिलता है । ऐसे शरीरको पाकर भी जो अपने कर्म-समूहको ईश्वर-पूजाके लिए समर्पण नहीं करते, अपितु केवल विषयों के अर्जन और उपभोगमें ही लगे रहते हैं, वे वास्तवमें आत्माकी हत्या करनेवाले ही हैं ।

●

'चर्पट-पञ्जरी' : एक दार्शनिक विश्लेषण

श्री शिवेन्द्रप्रसाद गर्ग 'सुमन'

१.

परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रीमच्छंकराचार्य-विरचित 'चर्पट-पञ्जरी' (चपेटोंका पिंजरा) का नाम पाठकोंने अवश्य सुना होगा। धार्मिक साहित्यमें इतना छोटा ग्रन्थ शायद ही कोई होगा, जो इतना लोकप्रिय और संपूर्ण धर्मग्रन्थोंका सार गागरमें सागरके समान भर देता है। समस्त शास्त्र इसमें आ गये हैं। एकमात्र इस ग्रन्थरत्नके अध्ययन, पठन एवं तदनुरूप आचरणसे कोई भी अभीप्सित अप्राप्य नहीं। यह ग्रन्थ मुक्तिका द्वार खोल देता है; जीवनकी निराशा, असफलतता एवं कुण्ठाओंमें यह ग्रन्थ दृढ मार्गदर्शन करता है, धैर्य बँधाता है। यदि हम दु:खी हैं, अशांत हैं, विचलित हैं तो इसका अध्ययन करके शांतिलाभ कर सकते हैं। यह आशा बँधाता है, दिलासा देता है एवं जीवनका सूनापन नष्टकर सच्चे साथीकी भाँति साथ देता है, ज्ञान प्रदान करता है। आप इसे पढ़कर वह दिव्यदृष्टि पायेंगे, जिससे संसारके कष्ट, रिश्ते-नाते, उदासी, चिंता, शोक, विषाद, अकेलापन, निराशा, मोह – सब आपको क्षणभंगुर लगेगा।

कमसे कम लेखकका तो यही मत है। कभी-कभी संसारसे प्रचण्ड वैराग्य होता है, अपनोंका कटु व्यवहार देखकर घृणा हो जाती है, जीनेकी कोई लालसा नहीं रहती। जिन्हें हम अपना समझते हैं, अपना सब कुछ मानते हैं, वे पराये और बेगाने हो जाते हैं। जो सर्वस्व है, वे कन्नी काटते हैं। तब सम्भव है, आप भी सोचें कि ऐसे जीवनसे तो मृत्यु ही भली! हम अन्तर्द्वन्द्व-में रत एवं किंकर्तव्य विमूढ़ हो जाते हैं। उस समय निम्न लिखित श्लोक संजीवनी बूटीकी भाँति अमृत-वर्षा कर आपको जीवन-लाभ प्रदान करता है—आपका जीवन बना देता है।

का ते कान्ता कस्ते पुत्रः, संसारोऽयमतीव विचित्रः।

अर्थात् यहाँ कोई किसीका साथी नहीं है। यह संसार बड़ा विचित्र है, उसकी गति भिन्न है। आप क्यों किसीसे कुछ आशा रखते हैं? सब अपने आपमें ही व्यस्त है। इस तरह यह चर्पट-पंजरिका सचमुच ज्ञानकी वर्षा करती है। आपका ध्यान ईश्वरके चरणोंमें लगाती है। इससे संसारसे आपकी स्वतः ही विरक्ति हो जायगी, जो जीवनका परम ध्येय है। अतः पाठक भी इसका बार-बार पठन-पाठन करें, यही मेरा विनम्र अनुरोध है!

यह चर्पट-पंजरिका साधुओंके लिए मुक्ति-सोपान, भक्तोंके लिए पथप्रदर्शनकारी चमत्कारी गुटका तथा सत्संगियोंके लिए हृदयग्राही मधुर-कीर्तन बताया गया है। इसका रसास्वादन वे ही भलीभाँति कर सकते हैं, जिन्हें संस्कृतका ज्ञान है। प्रस्तुत स्तोत्र अतिसरस, सरल एवं हृदयग्राही होनेके साथ ही ज्ञान एवं भक्तिका अनूठा समन्वय है। स्तोत्र पढ़ते जाइये और संसारकी अनित्यता तथा परमात्माकी महत्ताका अनुभव करते जाइये !

प्रस्तुत ग्रन्थरत्नकी रचनाके सम्बन्धमें यह किंवदन्ती प्रसिद्ध है कि काशीमें एकबार भगवान् शंकराचार्यजी गंगास्नान करने जा रहे थे। उन्होंने मार्गमें एक वृद्ध विप्रको डुकृञ् करणे धातुको रटते सुना। उसकी कुचेष्टा देखकर भगवान्‌को बड़ी दया आयी। उन्होंने विचार किया कि यह कब व्याकरण पढ़ेगा और कब वेदोंको पढ़कर उनके अनुसार गुरुकी शरण जाकर सच्चा ज्ञान हासिल करेगा? यह तो मृत्युके निकट ही पहुँचा हुआ है। जितना भी हो सके, इसे तो अब भगवान्‌का भजन ही करना चाहिए। तब शंकराचार्यजीने उसे प्रस्तुत मार्ग बतलाया कि अन्य किसी साधनमें सार नहीं है। ईश्वरप्राप्तिका सर्वसुगम एवं लघुतम मार्ग है, गोविन्दका भजन करना। अब अधिक समय तो शेष रहा नहीं, अतएव अन्य साधन अपर्याप्त है ! केवल 'गोविन्द, गोविन्द' भजन करके ही उसे सहज मुक्तिलाभ हो सकेगा।

ऐसा भी कहते हैं कि वह गरीब ब्राह्मण वृद्धावस्थामें गृहस्थीके जंजालमें फँसनेकी तीव्र आकांक्षा रखता था, पर द्रव्य न होनेके कारण उसने धनोपार्जन करनेके निमित्त विद्या-भ्यास प्रारम्भ किया। वह उस समय व्याकरण पढ़ते समय 'डुकृञ् करणे' धातु रट रहा था। संयोगसे श्रीशंकराचार्य वहाँ आ गये एवं उन्होंने उसे मायामें डूबा देखकर उसकी अज्ञानतापर यह स्तोत्र रचा, ताकि उसके नेत्र खुलें।

इस 'चर्पट-पंजरी' में केवल १६ ही श्लोक-'सुमन' हैं, पर इसका प्रत्येक श्लोक-'सुमन' ज्ञान एवं प्रेरणाके सागरसे परिपूरित है। एक अन्य पाठमें २० श्लोक भी मिले हैं। आइये ! अब आपके सम्मुख है, 'चर्पट-पंजरिका', जो इन पंक्तियोंके लेखकको बहुत प्रिय है, एवं जो निराशा एवं दुःखमें सदैव सान्त्वना एवं धैर्य बँधाती है। प्रत्येक श्लोकके साथ **भज गोविन्दं भज गोविन्दं भज गोविन्दं मूढमते** पंक्तिकी पुनरावृत्ति हुई है।

भज गोविन्दं भज गोविन्दं भज गोविन्दं मूढमते।
प्राप्ते सन्निहिते मरणे नहि नहि रक्षति डुकृञ्करणे ॥ १ ॥ भज…

हे मूर्ख (बुद्धिहीन मनुष्य) ! गोविन्द (भगवान्) का भजन करो ! मृत्युके निकट आनेपर 'डुकृञ् करणे' धातुको बार-बार रटना तुम्हारी रक्षा नहीं करेगा। (मृत्युके निकट पहुँचकर इसे रटना निरर्थक है, अब तो तुम्हें गोविन्दका ही भजन करना चाहिए।) इसलिए हे मूढ़बुद्धिवाले, तू गोविन्दका भजन कर !

बालस्तावत् क्रीडासक्तस्तरुणस्तावत् तरुणीरक्तः।
वृद्धस्तावच्चिन्तामग्नः परे ब्रह्मणि कोऽपि न लग्नः ॥ २ ॥ भज…

जब बालक था, तब खेलमें रहा करता था, युवा हुआ तो स्त्रीमें लीन रहा, वृद्ध हुआ तो (तरह-तरहकी) चिन्तामें डूबा रहा, कभी परब्रह्मके ध्यानमें कोई नहीं लगा। (सभीकी ऐसी गति होती है एवं कोई भी परमात्माकी तरफ लगन नहीं लगाता। अतः अब तो कमसे कम भगवान्का भजन कर, तेरा इसीमें कल्याण है) !

अङ्गं गलितं पलितं मुण्डं दशनविहीनं जातं तुण्डम्।
वृद्धो याति गृहीत्वा दण्डं तदपि न मुञ्चत्याशापिण्डम् ॥ ३ ॥ भज…

अङ्ग गल गये, सिरके बाल सफेद हो गये। मुख दाँतरहित पोपला हो गया, वृद्ध हुआ लाठीके सहारे चलता है, तो भी आशाके पिंडको नहीं छोड़ता। (शरीरका प्रत्येक अङ्ग अब बेकार हो गया, हाथ-पैरोंमें शक्ति नहीं रही, फिर भी निर्लज्ज मन आशाका पिंड नहीं छोड़ता। अब भी जीने एवं उपभोगकी आशा बनी हुई है।) अरे मूर्ख ! तू अब भी गोविन्द का भजन कर।

पुनरपि जननं पुनरपि मरणं पुनरपि जननीजठरे शयनम्।
इह संसारे खलु दुस्तारे कृपया पारे पाहि मुरारे ॥ ४ ॥ भज…

बार-बार जन्म लेना पड़ता है, बार-बार मरना पड़ता है, और बार बार माताके उदरमें सोना पड़ता है, इसलिए हे मुरारी प्रभो ! इस दुस्तर अपार संसारसे मुझे पार करो (मेरा उद्धार करो, मूर्ख ! तू ऐसो भगवान्से प्रार्थना कर) ! जरा मरणके एवं माताकी जठराग्निमें बार-बार जलनेके कष्टोंसे बचनेका मात्र उपाय गोविन्दकी शरण है। अतएव उनसे प्रार्थना कर एवं हर समय उनका भजन कर; क्योंकि जबतक तेरी मुक्ति नहीं होगी, तबतक इन कष्टोंसे तू मुक्त नहीं हो सकेगा। बिना भजनके तुझे परब्रह्मका ज्ञान भी नहीं होगा, जिसके अभावमें मुक्ति सम्भव नहीं।

दिनमपि रजनी सायं-प्रातः शिशिर-वसन्तौ पुनरायातः।
कालः क्रीडति गच्छत्यायुस्तदपि न मुञ्चत्याशावायुः ॥ ५ ॥ भज…

दिन होता है, रात होती है, शाम होती है, सवेरा होता है, शिशिर-वसन्तादि ऋतुएँ बार-बार आती हैं। इस प्रकार काल क्रीड़ा करता है और आयु चली जातो है; तो भी आशाके पवनको नहीं छोड़ता। (काल क्रीड़ा करता रहता है, आयु तो बीतती ही रहती है, तो भी मनुष्य आशारूपी वायुको नहीं छोड़ता। यह कालरूपी खिलाड़ी मानव-शरीरके जीवोंसे खेल खेलता रहता है और हमें होश नहीं आता।)

जटिलो मुण्डी लुञ्छितकेशः काषायाम्बरबहुकृतवेषः।
पश्यन्नपि न च पश्यति मूढः उदरनिमित्तं बहुकृतवेषः ॥ ६ ॥ भज…

शिरपर जटाएँ रखनेवाला, शिरके सम्पूर्ण बालोंको मुँडानेवाला, बाल कटाये, भगवा वस्त्रवाला, अनेक प्रकारके वेष धारण करनेवाला पेट भरनेके लिए तरह-तरहके वेष

धारण करता है। (मूढ़ मनुष्य देखता हुआ भी नहीं देखता, अर्थात् उसे संसारकी माया एवं परब्रह्मका भेद नहीं देख पड़ता। पापी मनुष्य पेट भरनेके लिए ये सब विभिन्न भेष करता है। वह मूढ, यह जानते हुए भी कि इन वाह्य वेषोंसे आत्मिक शान्ति नहीं मिलेगी, अनजात बनता है एवं दुनियाकी देखादेखी ऐसे ही आडम्बर करता है। कल्याण तो गोविन्दका भजन करनेसे ही होगा।)

वयसि गते कः कामविकारः शुष्के नीरे कः कासारः।
क्षीणे वित्ते कः परिवारो ज्ञाते तत्त्वे कः संसारः॥ ६॥ भज…

अवस्था वीत जानेपर कामविकारकी शक्ति नहीं रहती, पानी सूख जानेपर तालाव नहीं रहता, धन नष्ट जानेपर परिवार नहीं रहता (धनके कारण ही परिवार पीछे लगा रहता है), धन न होनेसे होता हुआ परिवार भी कहाँ है? तत्त्वके जानलेनेपर संसार भी नहीं रहता (अतएव तू तत्त्वको जान, उसे जानकर तू संसारको भूल जायगा। तत्त्ववोध या आत्म-वोध होनेपर ही तू संसारके स्वरूपको भूल सकेगा। वह तत्त्ववोध केवल गोविन्द भजनसे ही सम्भव है। फिर तो यह संसार तुझे माया लगेगा, और अन्य कुछ नहीं।

अग्रे वह्निः पृष्ठे भानू रात्रौ चिवुकसमर्पितजानुः।
करतलभिक्षा तरुतलवासस्तदपि न मुञ्चत्याशापाशः॥ ८॥ भज…

आगे अग्नि है, पीछे सूर्य है और रात्रिमें घुटनेपर ठुड्डी रखे पड़ा रहता है। हथेलीपर भिक्षा लेता है, वृक्षके नीचे वास करता है। ऐसी अवस्था होनेपर भी आशाके फंदोंको नहीं छोड़ता। मानवकी कितनी दयनीय दशा है! उसके पास भिक्षा पात्रतक नहीं है, पेड़के नीचे सोना पड़ता है, तो भी वह आशाकी फाँसीको नहीं छोड़ता। यह आशाका वन्धन तो गोविन्दके भजनसे ही छूटता है। जो लोग संसारको दुःखरूप जान त्याग देते हैं, और ऐसी तपस्या करते हैं कि आगे पञ्चधूनी जला लेते हैं, पीठकी ओरसे ताप सहते हैं सूर्यका, सर्दीकी रात्रि विना कपड़ोंके विताते हैं, तो भी वे आशा नहीं त्यागते।

गोविन्द-वन्दना

ॐ नमो विश्वरूपाय विश्वस्थित्यन्त हेतवे।
विश्वेश्वराय विश्वाय गोविन्दाय नमो नमः॥

सम्पूर्ण विश्व जिनका स्वरूप है, जो विश्वके पालन और संहारके एकमात्र कारण हैं तथा जो स्वयं ही विश्वरूप और इस विश्वके अधीश्वर हैं, उन भगवान् गोविन्दको वारम्वार नमस्कार है।

सच्ची कहानी

ऐसी हो बहू

श्रीकृष्ण गोपाल माथुर

★

नमस्तुलसि सर्वज्ञे पुरुषोत्तमवल्लभे।
पाहि मां सर्वपापेभ्यः सर्वसंपत्प्रदायिके ॥

वह प्रातःकाल ही स्नानादिसे निवृत्त होकर शुद्ध श्वेतवस्त्र पहन उपर्युक्त मन्त्रसे तुलसीवृक्षमें जल चढ़ाकर वहीं महावीर पवनकुमारको आसन दे माताजीके साथ श्रीराम-चरितमानसका पाठ करने बैठ जाती थी। कहती : माँ, **रामकथा सुन्दर करतारी, संसय बिहँग उड़ावनहारी** कितनी सुन्दर चौपाई है।' माता सुधा कहती : 'बेटी, मानसका एक-एक अक्षर मन्त्र है। ये ही हमारी चिन्ताका हरण करेंगे।'

"सुखदेव ! देख तो, हमारी श्री बाईजी कितनी सुयोग्य, नम्र और मृदुभाषिणी हैं! मेरे रसोईघरमें आकर सभी प्रकारकी स्वच्छताके बारेमें मीठी वाणीसे मुझे समझाती हैं, छोटीसे छोटी बातको भी नहीं छोड़तीं।"

"हाँ, रामू ! इनके गुणोंका क्या कहना ! ऐसी सादी-स्वच्छ ढीली पोशाक पहनकर, जिसमें अंगोंका उभार दिखाई न दे, जब ये कालेजमें पढ़नेको जाती हैं तो मैं भी इन्हें पहुँचाने जाता हूँ। वहाँ देखता हूँ कि सभी छात्रोंसे विनय, नम्रता और निर्मल भ्रातृभावसे प्रणाम करती हैं। वे सभी इन्हें सहोदर भगिनी समझकर शुद्ध हृदयसे 'प्रणाम बहनजी!' कहकर चले जाते हैं। दोनों ओरसे पूर्ण सद्भाव होता है।"

"हाँ भाई, हमारे रिटायर्ड जज रामधनीजीको भगवत्कृपासे ही ऐसी गुणवती पुत्री प्राप्त हुई है, जिसे बी० ए० पास कर लेनेपर भी अभिमान छू नहीं गया; सादगीमें तनिक थी अन्तर नहीं आया। भगवान् करे, इसे ऐसे ही गुणवाला वर मिले।"

दोनों सेवक उपर्युक्त वार्तालाप कर ही रहे थे कि इतनेमें रामधनीजी एक युवकको साथ लिये भवन पर आये और युवकको बैठकमें बिठाकर अन्दर जा पत्नी सुधादेवीसे हँसते-हँसते कहने लगे : "लो, आज सर्वान्तर्यामी भगवान्ने हमारी दौड़धूपका परिणाम अच्छे रूपमें दिखा दिया। श्रीके साथ जाकर देख लो उसे। श्री बेटीके योग्य वर जानकर तुम्हें असीम आनन्द होगा। मार्गमें मेरी मोटर खराब हो जानेपर कई व्यक्ति तमाशा देखते रहे, किन्तु

इस सरल एवं सादी पोशाक पहने उत्साही जवानने बिना बुलाये ही आगे आ मेरी मोटरको धक्का देकर गति दे दी। बातचीतसे मैंने जान लिया कि यह गरीब घरानेका लड़का है। अंग्रेजी कहानियोंका हिन्दीमें अनुवाद कर उस पारिश्रमिकसे प्रथम श्रेणीमें एम० ए० पास कर लिया है। अब सरकारी छात्रवृत्ति लेकर दो मासमें विदेश चला जायगा।"

सुधा, श्री एवम् जजसाहब युवककी शारीरिक गठन, सुन्दर तन गम्भीर मन और स्वर्ण-कान्ति-से युक्त मुखमण्डलको देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। खूब आदर-सत्कार किया उसका। दानी युवकके गरीब जीवनमें तो एक रईस द्वारा इतना सम्मान पानेका पहला ही अवसर था। अतः शुभ-मुहूर्तमें श्रीका विवाह उस दानी युवकसे कर दिया गया बड़ी धूम-धामसे।

दानी अपनी प्रियाको लेकर अपने गाँव आया। वहाँ निजी घर तो खण्डहर था। अतः धनाढ्य चाचाके भवनमें उनकी स्वीकृतिसे एक कोठरीमें पत्नीको ठहरा दिया, कामकाजके लिए एक लड़केको नौकर रख दिया और आप विदेश जानेकी तैयारी करने लगा।

बहू श्री चाचाजीके भरे-पूरे घरमें बड़ोंका भक्तिपूर्वक आदर और छोटोंसे प्रेमका व्यवहार करने लगी। गाँवकी छोटी-बड़ी स्त्रियोंसे भी उसका परिचय हो गया। उसके सरल हँसमुख स्वभाव एवं मिलनसारीके गुणोंसे सभी उसके प्रति स्नेहका व्यवहार करती हुई, उसके द्वारा "रामचरितमानस" की रोचक और भक्तिकी मनोरम कहानियाँ सुन-सुनकर अपने ग्राम्य-गीतोंमें रामभजन गाने लग जाती थीं। इस प्रकार मानो श्री बहूके निकट चारों ओर ग्राम्य-नारियोंका जमघट उसे छोड़ता न था। चाचाजीका कुटुम्ब भी इस कार्यमें नाराज न होकर सहायता ही करता था। धीरे-धीरे बहूके सरल व्यवहारसे सभी उसका आदर करने लगे। प्रशंसाके पुल बाँधे जाने लगे।

बहूको सीना, कसीदा काढ़ना, हारमोनियमपर गाना, भगवान्के अवतारोंके चित्र बनाना आता था। वह सभीको बड़े आदरभावसे अपने पास बैठाकर ये गुण सिखाया करती थी। मैले कुचेले, अपढ़, ग्राम्य गँवार बुद्धिहीन जानकर भी वह किसीके साथ दुर्व्यवहार नहीं, पर मानवोचित बराबरीका व्यवहार करके हर समय उनके साथ प्रेम, विनय, निरभिमानताके साथ स्नेहका व्यवहार करती थी। इन सभी सद्गुणोंके कारण उसकी चारों ओर प्रसिद्धि हो गयी।

एक दिन परनिन्दाके स्वभावके कारण एक फूहड़ ग्राम्य नारीने श्री बहूको दूरसे बताया : "वह देखो, खंडहर तुम्हारा निजी घर है, वे टूटे छप्परके नीचे तुम्हारे ससुर हुक्का पी रहे हैं।"

श्री चौंकी, किन्तु शीघ्र ही उसने अपनेको सम्भालकर दूर ही से पूज्य ससुरजीको आँचलसे ७ वार प्रणाम किया और तत्काल ही अपना सारा सामान उस खंडहरमें भिजवाना शुरू कर दिया।

चाचाजी यह देखकर दौड़े आये। बोले : "सौभाग्यशालिनी बहू, यह क्या कर रही हो? मेरी बड़ी बदनामी होगी। बड़े घरवालोंमें आपसमें जहाँ एकसूत्रमें सबमें प्रेमका व्यवहार होता है, वहाँ तुम्हारा यह काम देखकर लोग तरह-तरहकी शंका करेंगे। मुझे लज्जाके वश नीची गर्दन झुकानी पड़ेगी।"

श्रीने यह सुना, हाथ जोड़े, चाचाके चरणोंमें प्रणाम किया। बोली : "आदरणीय, इसमें लोगोंके शंका करने या बदनामी होने जैसी कोई बात ही नहीं है। वह घर भी आपका ही है। मैं दोनों घरोंमें प्रसन्नतापूर्वक रहूँगी। भेद-भावकी गुञ्जाइश ही नहीं। आप तनिक भी चिन्ता न करें और अपनी सच्ची सेविका बहूको अपनी ही जानकर बराबर स्नेह बनाये रहें।"

श्रीने खंडहरमें आकर पहले तो अपने आंचलसे पूज्य ससुरके बार-बार पैर छूकर उनके अशेष आशीर्वाद लिये, और फिर अपनी रेशमी नयी साड़ीका कमर-कछौटा बाँधकर सारे खंडहरको झाड़-बुहारकर स्वच्छ किया और गोबर-मिट्टीसे उसको लीपने लगी। इतनेमें नौकरने सामान बाहर रख दिया। नौकरसे जल मँगवाकर श्रीने ससुरजीको स्नान करवाकर नये वस्त्र पहनाये। स्वयम् स्नान किया। फिर सुस्वादु भोजन तैयार करके, भगवान्‌के भोग लगाया और तुलसीदल-समेत उस महाप्रसादको पहले ससुरजीको भोजन कराया, इनके आराम करनेको शय्या बिछा दी और महाप्रसादकी पान-सुपारी उन्हें देकर आराम करनेकी प्रार्थना की। हजारों असीसें देते-देते ससुरजी सो गये। इधर श्रीने स्वयं भोजन करके नौकरको खिलाया-पिलाया और भगवत्स्मरण करनेमें चित्त लगाया।

यह खबर बिजलीकी भाँति सारे गाँवमें फैल गयी। सभी स्त्रियाँ श्रीके काममें हाथ बँटानेके निमित्त दौड़ी आयीं, पर उसने सभीको आदर-सत्कारसे बैठाते हुए हँसते-हँसते कहा—"यह तो घरका काम मेरे हाथोंसे ही करनेका था, सो मैंने कर लिया है। मेरे प्रति आपका सरल स्नेह अपार है। आपके बीच ही रहती हूँ। यदि कोई कार्य हुआ, तो अवश्य आपसे निवेदन करूँगी।"

चाहे, अपढ़, अशिक्षित हो, किन्तु प्रेमका प्रवाह सबके अन्तरमें अबाध गतिसे बहता रहता है। बहूकी कुटिया पर रात-दिन गाँवकी वृद्धा स्त्रियाँ, बराबर उम्रकी नारियाँ, बच्चे और आस-पास गाँवकी प्रेमयुक्त हृदयवाली स्त्रियाँ इतनी एकत्र हो जातीं कि मेला-सा लग जाता था। सुशील, सरल, विनीत और शुचि स्वभावकी श्रीबहू सबसे यथायोग्य मृदुल व्यवहार करती हुई, उनके बीचमें देवी-सी बैठ जाती थी। कई नवयुवक भी प्रशंसा सुनकर, कामुकता-के भावोंको परे रखकर, भगिनीतुल्या श्रीबहूको देखने आते और देखते ही श्रीके तपःपूत मुखारविन्दसे दो शब्द स्नेहभरे सुनकर आत्म-विभोर हो घर लौटते थे। ऐसे अपने शील, सन्तोष, मृदुल स्वभाव, कर्तव्य-पालनकी दृढ़ता, सेवाके भाव, समदर्शिता और सबसे यथा-योग्य बर्तावकी कलामें निपुण श्रीबहूकी प्रशंसा दूर-दूर तक फैल गयी।

× × ×

कुछ दिनोंके पश्चात् श्रीदेवीने अपने माता-पिताको सब वृत्तान्त अवगत करानेके लिए पत्र लिखा। उसमें यह भी लिखा कि आपकी धार्मिक, नैतिक, कर्त्तव्य-परायणताकी शिक्षा-दीक्षाको परखनेका मुझे यहाँ सुअवसर प्राप्त हो गया है और मैं तदनुकूल ही बरत रही हूँ। विश्वास रखें कि "श्रीरामचरित मानस" का पारायण करनेमें थोड़ी भी त्रुटि नहीं हो रही है।"

किन्तु पतिदेव दानीको उसने कोई पत्र विदेश नही भेजा, यहींसे उनके सफलमनोरथ होकर शीघ्र स्वदेशकी लौटनेकी कातर प्रार्थना प्रभुसे करती रही। दिन-मास चलते रहे।

× × ×

दारागंजके मार्गपर चलते-चलते पथिक एक दिन आपसमें बातें कर रहेथे। "क्यों जी, बहूजीकी झोपड़ी कहां गयी? इनके पिताजीने महल बनवा दिया है। आज गृह-प्रवेशका प्रीति-भोज है। वह देखो, बहूजीने ससुरको स्नान कराकर सुन्दर नयी पोशाक पहनाकर चाँदीके पलंग पर रेशमी तकिये लगा बैठा दिया है। दानी विदेशसे उच्च शिक्षामें प्रथम श्रेणीमें उत्तीर्ण हो आया, यहाँ ऊँचे पदपर है, पिताजीके चरणोंमें नम्र-भावसे बैठा है: देखो, गुणवती सरल स्वभाववाली बहूजी सबके साथ ही ग्रामीण, मैली, कुचैली जनताको आदर-भावसे बैठाकर प्रीतिपूर्वक भाँति-भाँतिकी सुस्वादु भोज्य-सामग्री स्वयं अपने हाथोंसे परोसकर आग्रह करती हुई भोजन करा रही हैं। सभी भोजन करते-करते बहूजीके गुणोंकी प्रशंसा करते जा रहे है। समता, सौजन्य एव आनन्दरसकी मानों सरिता वह रही है। धन्य है, इस बहूरानीको, जिसने नम्रता और विनय भरे सत्कारसे सबके दिलोंको जीत कर जंगलमें मंगल करनेका आदर्श उपस्थित कर दिया है।"

इस प्रकारके वार्त्तालापके सिलसिलेमें उन्हींमें से एक वृद्ध भगवद्-भक्त सज्जन बोल उठे—"भाई, यह सब रामचरित मानसके विश्वासपूर्वक पाठ करते रहनेका फल है। यह तो क्या, भगवान् श्री रामचन्द्रजीकी भक्ति अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष चारो पुरुषार्थ करतलगत करा देती है।" यह सुनकर सबने उच्चस्वरसे श्रीरामका जय-घोष किया और—

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

इस मन्त्रको जपते-जपते वे अपने मार्ग पर चल दिए। बहूजीका यह भव्य भवन आज भी सबको प्रेरणा दे रहा है।

●

परम पुरुष श्रीकृष्णकी आराधना

जिसके मनमें कोई कामना नहीं है, या जो सब कुछ पानेकी कामनावाला है अथवा जो उदार-बुद्धि पुरुष केवल मोक्ष की ही कामना रखता है, सबको तीव्र भक्तियोगके द्वारा परम पुरुष भगवान् श्रीकृष्णकी ही आराधना करनी चाहिए।

(श्रीमद्भागवत २.३.१०)

मार्कण्डेय पुराणके आलोकमें—

राष्ट्रीय शक्ति-साधनाका रहस्य

पांडेय डॉ० श्री नागेश्वर सिंह 'शशीन्द्र' विद्यालंकार

★

या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥
या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥

शक्ति-साधना तथा वीर-पूजाके रूपमें भारत तथा अन्य हिन्दू बहुल राष्ट्रोंमें प्राचीन-कालसे ही शक्ति समाराधनाकी परम्परा चली आ रही है। समाज एवं राष्ट्रकी बिखरी हुई वैयक्तिक शक्तिको महान शक्तिके रूपमें प्रतिष्ठितकर अभीष्ट-सिद्धि ही शक्ति साधनाका मूल उद्देश्य है, जिसका प्रमाण पुराणोंमें वर्णित दुर्गाके प्रादुर्भावकी कथाओंसे मिलता है! मार्कण्डेयपुराणमें वर्णित कथामें उल्लेख है कि एक बार देवता दानवोंके भीषण उत्पातसे निराश बन बैठे थे। अपने त्राणके लिए देवताओंको अपना कोई त्राता दूसरा नहीं दिखायी दिया, देव-समाजका व्यक्ति-व्यक्ति पग-पग पर ठोकरें खाता हुआ भयंकर दुर्दमनीय दानवोंके दमनसे दुखी होकर आक्रोश करने लगा। परन्तु अलग-अलग डफला बजाने और पृथक्-पृथक् आक्रोश करनेका कोई फल न देख समस्त देवताओंने मातृ-शक्तिका सहारा लेनेके लिए भगवान् शिवशंकरकी पत्नी पार्वतीसे अपनी रक्षाकी याचनाका संकल्प लिया। संकल्पकी सिद्धिके लिए सारा देव-समाज हिमालयके दुर्गम मार्गको पारकर, पार्वतीके समक्ष पहुँचा और बिलख-बिलखकर अपनी दुर्गतिकी कहानी : **नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः** के माध्यमसे सुना-सुनाकर त्राण दिलानेकी याचना करने लगा।

देवताओंकी दुखद गाथासे द्रवीभूत होकर अपराजिता दयामयी देवी असुरोंकी दानवी लीलाको सुनकर रोषाग्निसे जलने लगीं। शीघ्र ही वहाँ एक स्वर्गीय अलौकिक ज्वाला प्रकट हुई जो पृथ्वीसे अकाश तक विराटरूपसे व्याप्त हो गयी। देवताओंको आश्चर्यचकित करने-वाली उस असीम ज्वालासे एक महासुन्दरी देवी प्रकट हुई। उस अलौकिक शक्तिसे विमुग्ध होकर समस्त देव-समाज एक स्वरसे प्रार्थना करने लगा। देवीकी अलौकिक प्रतिमाको देख-कर देव-समाजको अपने त्राणकी आशा बढ़ी। देवोंने अपने-अपने शस्त्रास्त्र उस देवीको

अर्पितकर उसे 'दुर्गादेवी'के नामसे अभिहित किया। अनेक भुजाओंवाली दुर्गाने अपने सभी हाथोंमें देवताओंसे प्राप्त शस्त्रास्त्रोंको सँभालकर अपने दुर्गानामके अनुरूप देव-समाजको अभय प्रदान किया। और सभी देवताओंकी पत्नियोंने अपने-अपने वाहनोंपर सवार हो सिंह-वाहिनी दुर्गा देवीका साथ दिया। दुर्गाके नेतृत्वमें वीरांगनाओंका समाज दुर्दमनीय दानवोंके साथ लोहा लेनेको सन्नद्ध हुआ। इस प्रकार वीर देवांगनाओंकी प्रचण्ड शक्तिका प्रादुर्भाव हुआ। उक्त पुराणमें दुर्गादेवीके साथ महाबली महिषासुरकी घनघोर लड़ाईका वर्णन है। दुर्गाकी शक्तिने महिषासुरका वधकर सारे देव-समाजको त्राण दिया और देवताओंने भी देवीकी अनुपम शक्ति और पराक्रमसे प्रभावित होकर : जो देवीकी दिव्य स्तुति की, वह 'शक्रादि-स्तुति'के नामसे प्रसिद्ध है। इसी तरह शुम्भ-वधके पश्चात् देवताओंने—

> शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणे।
> सर्वस्यार्तिहरे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते॥

से जो आनन्दविह्वल हो स्तुति-गान किया—उससे प्रसन्न होकर अभयदान देते हुए संसारकी माँ दुर्गाने कहा था :

> इत्थं यदा यदा बाधा दानवोत्था भविष्यति।
> तदा तदावतीर्याहं करिष्याम्यरिसंक्षयम्॥

बस राष्ट्रकी इस संकटकालीन स्थितिमें जब सारा देश विनाशकी ओर जा रहा है, आदमी ही आदमीका शत्रु बन रहा है, भीषण महँगीका आलम छाया हैं, नेता और जन-समाज दोनों राष्ट्रीय चरित्रसे अलग हट रहे हैं, दैविक, दैहिक, भौतिक तापोंमें पड़ा सारा राष्ट्र जर्जर हो रहा है, वैसी स्थितिमें उसी शक्ति साधनाकी आवश्यकता आ पड़ी है। आज पुनः हिमालयसे लेकर कन्याकुमारी तक उसी शक्ति-साधनाका आश्रय लिया जाय। अतः अब पुनः हम उठें और इस दानवी लीलाको समाप्त करनेका फिरसे संकल्प लें। तभी राष्ट्रमाता दुर्गा भी हमारी सहायता करेंगी।

•

धर्मका त्याग न करे

धर्म ही आहत (परित्यक्त) होनेपर मनुष्यको मारता है और वही रक्षित (पालित) होनेपर रक्षा करता है; इसलिए मैं धर्मका त्याग नहीं करता हूँ; इस भयसे कि कहीं मारा गया (त्यागा गया) धर्म हमारा ही वध न कर डाले।

(महा० वन० ३१३.१२८)

नीति-वचनामृत

१.

जीवन्तोऽपि मृताः पञ्च श्रूयन्ते किल भारते ।
दरिद्रो व्याधितो मूर्खः प्रवासी नित्यसेवकः ।।

पांच जियत हू जगतमें सुनियत प्रानविहीन ।
नित सेवक, रोगी, अबुध, परदेसी अरु दीन ।।

२.

अयशः प्राप्यते येन येन चापगतिर्भवेत् ।
स्वर्गाच्च भ्रश्यते येन तत् कर्म न समाचरेत् ।।

अपजस जा ते पाइये नहिं लहिये सुरधाम ।
जाते अपगति होत नित नहिं कीजै वह काम ।।

३.

आपत्काले तु सप्राप्ते यन्मित्रं मित्रमेव तत् ।
वृद्धिकाले तु संप्राप्ते दुर्जनोऽपि सुहृद् भवेत् ।।

साथ देत जो बिपदमैं कतियत सोई मित्र ।
वृद्धि-कालमैं कुजन हू लखियत सुहृद-चरित्र ।।

●

सूक्ति-सुधा

श्रीलक्ष्मीकी स्तुति

अङ्गं हरेः पुलक - भूषणमाश्रयन्ती
भृङ्गाङ्गनेव मुकुलाभरणं तमालम् ।
अङ्गीकृताखिल - विभूतिरपाङ्गलीला
माङ्गल्यदास्तु मम मङ्गलदेवतायाः ।।

पुलक - अलंकृत सुअंगपर श्रीहरिके
ललित ललाम रमाकी जो दृष्टि जाती है।
मुकुल - विभूषित तमाल तरुवर पर
भृङ्ग - अङ्गनाओंके समान छवि पाती है ।।
चितवन लीला वह मङ्गल - सुदेवताकी
निखिल विभूति जहाँ लोटती लखाती है ।
निशि दिन मेरे लिए मङ्गल प्रदायिनी हो
मुनि मनमोहनका मन जो लुभाती है ।।

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघ मथुराके लिए देवधरशर्मा द्वारा आनन्दकानन प्रेस, ढुण्डिराज, वाराणसी—१ में मुद्रित एवं प्रकाशित